केवल स्थान बदल देने से अर्थ बदल जायगा। इसी प्रकार अन्य भाषाओं में भी स्थान-परिवर्तन से अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। चीनी भाषा में ज़ेन का अर्थ है—आदमी, ता का अर्थ है—बड़ा या महान् है। 'ता' क्रिया और विशेषण दोनों हो सकता है। ज़ेन ता (आदमी महान् है), ता ज़ेन (महान् व्यक्ति, बड़ा आदमी)। पहले वाक्य में 'ता' क्रिया है, दूसरे में विशेषण।

५. अर्थ-परिवर्तन—अर्थ-परिवर्तन के द्वारा भी भाषा में परिवर्तन की दिशा का बोध होता है। प्राय: देखा जाता है कि जो शब्द मूलरूप में जिस अर्थ के बोधक थे, वे कालान्तर में अपने मूल अर्थ को छोड़कर दूसरे अर्थ में प्रयुक्त होने लगते हैं। कहीं पर अर्थ में विस्तार होता है, कहीं पर अर्थ में संकोच और कहीं पर अर्थादेश या अर्थ में मौलिक परिवर्तन। इनको अर्थ-विस्तार, अर्थ-संकोच और अर्थादेश कहा जाता है। इसका विस्तृत विवेचन अध्याय ६ में किया गया है। 'कुशल' शब्द का मुख्यार्थ था—कुशों को काटने की योग्यता। कुश-छेदन में चतुरता एवं सावधानी की आवश्यकता थी, अत: बाद में कुशल शब्द चतुर का पर्यायवाची हो गया। इसी प्रकार 'प्रवीण' का मुख्य अर्थ था—'प्रकृष्टो वीणायाम्' वीणा वादन में चतुर। परन्तु अर्थ विस्तार से अब चतुर अर्थ का ही बोधक है। 'तैल' का अर्थ था—तिल का सारभाग। परन्तु अर्थ-विस्तार से यह सभी द्रव्यों के सार के लिए प्रयुक्त होने लगा है। सरसों का तेल, गोले का तेल, मूँगफली का तेल। इतना ही नहीं 'मिट्टी का तेल' भी तेल हो गया है। वेद में 'मृग' शब्द पशुमात्र का वाचक था। वह बाद में केवल 'हिरन' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यह अर्थसंकोच है। इसी प्रकार पंकज, नीरज, सरोज, उपनयन, संन्यास आदि शब्दों में अर्थसंकोच है। वेद में 'पत्' धातु का उड़ना अर्थ था, अब 'गिरना' अर्थ हो गया है। वेद में 'सह्' धातु का अर्थ 'जीतना' था, अब 'सहन करना' अर्थ हो गया है। वेद में असुर का अर्थ था—असु + र (प्राणशक्तिसंपन्न), अब वह अ + सुर होकर दानव हो गया है। इस प्रकार अर्थ-परिवर्तन भी भाषा-परिवर्तन की एक दिशा है।

३.५. भाषा में परिवर्तन के कारण

भाषा में परिवर्तन के कारणों पर प्राचीन समय से विचार होता रहा है। इस विषय पर संस्कृत में जिन शब्दशास्त्रियों ने विचार किया है, उनमें विशेष उल्लेखनीय हैं—आचार्य यास्क, पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि, वाक्यपदीयकार भर्तृहरि, काशिकाकार जयादित्य और वामन, कैयट, भट्टोजि दीक्षित और नागेश भट्ट। वर्तमान समय में भाषा-परिवर्तन विषय पर अनेक विद्वानों ने विशद विवेचन प्रस्तुत किया है। यूरोप में इस विषय पर सर्वप्रथम विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करने वाले डेनिश विद्वान् जे०एच० ब्रेड्सडॉर्फ (J.H. Bredsdorff) थे। इन्होंने १८२१ में एक पुस्तिका प्रकाशित की थी। उसमें भाषा-परिवर्तन के ७ कारण बताये थे।[1] इस विषय पर प्रो० ई०एच० स्टुर्टेवेंट (E.H. Sturtevant : Linguistic Change), ओटो येस्पर्सन (Otto Jespersen : Language, pp. 255-301) और हेनरी एम० होनिग्सवाल्ड (Henry M. Hoenigswald : Language Change and Linguistic Reconstruction) ने आधुनिक पद्धति से बहुत विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है।

1. Otto Jespersen : *Language*, p. 70.

आभ्यन्तर और बाह्य कारण—भाषा में परिवर्तन या विकास के कारणों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—१. आभ्यन्तर या आन्तरिक, २. बाह्य या बाहरी। आभ्यन्तर कारण वे हैं, जिनका सम्बन्ध भाषा की अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति से है या जो प्रयोक्ता और श्रोता की शारीरिक या मानसिक स्थिति से सम्बन्ध रखते हैं। बाह्य कारण वे हैं, जो बाहर से भाषा को प्रभावित करते हैं। इसमें सामाजिक वातावरण या परिवेश आदि सम्मिलित हैं।

३.५. (क) आभ्यन्तर कारण

आभ्यन्तर कारणों को मौलिक कारण भी कहा जा सकता है। ये कारण भाषा के मूल में रहते हैं, अत: जाने या अनजाने भाषा में परिवर्तन या विकास उपस्थित करते रहते हैं। आभ्यन्तर कारण भाषा में साक्षात् परिवर्तन नहीं करते हैं, अपितु परिवर्तन का कारण प्रस्तुत करते हैं, जिससे धीरे-धीरे वह परिवर्तन समाज की स्वीकृति प्राप्त करके सर्वजनग्राह्य हो जाता है।

(१) अपूर्ण श्रवण

यह पहले उल्लेख किया गया है कि भाषा अर्जित संपत्ति है। भाषा अपने पूर्वजों से, शिक्षकों से, समाज से एवं यान्त्रिक विधियों से सीखी जाती है। बालक अपने माता-पिता आदि से भाषा सीखता है। इस सीखने की क्रिया में तीन बातें होती हैं—१. सुनना, २. स्मरण रखना और ३. पुन: उच्चारण। कितनी ही ध्वनियाँ ऐसी हैं, जो प्रथम बार सुनने पर स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ती हैं। मात्रा ह्रस्व है या दीर्घ, व है या ब, श है या स। अनेक बार उच्चारण करने पर एक-एक शब्द का उच्चारण ठीक होता है। यदि सुनने में ही अशुद्धि है तो बालक अशुद्ध ही स्मरण रखेगा और अशुद्ध ही उच्चारण करेगा। जिस प्रकार सुनने में त्रुटि संभव है, उसी प्रकार याद रखने में भी त्रुटि हो सकती है। जैसा शब्द का संस्कार बुद्धि पर पड़ेगा, उसी प्रकार उच्चारण भी शुद्ध या अशुद्ध होगा। अतएव व-ब, स-श, इ-ई, उ-ऊ आदि की सैकड़ों अशुद्धियाँ इसी प्रकार भाषा में प्रचलित हो गई हैं।

(२) अपूर्ण अनुकरण

अपूर्ण, अधूरा या अस्पष्ट अनुकरण भाषा में परिवर्तन का प्रमुख कारण है। यदि अनुकरण सर्वथा पूर्ण है तो शब्दों का उच्चारण ठीक उसी प्रकार होगा। परन्तु देखा जाता है कि अनुकरण अधिकांशत: अपूर्ण ही होता है। बाल्यावस्था में बालक माता-पिता आदि के द्वारा उच्चरित शब्दों को सुनकर अनुकरण करके बोलता है। उसका उच्चारण ठीक न होने पर उसे बार-बार बुलवाकर ठीक कराया जाता है। ध्वनि का अनुकरण सुनकर तथा उच्चारण-अवयवों के संचालन को देखकर किया जाता है। ध्वनि, शब्द या वाक्य को सुनकर उसे स्मरण किया जाता है और तदनुसार ही उच्चारण का प्रयत्न एवं अभ्यास किया जाता है। इस प्रक्रिया में दो बातें सामान्यतया घटित होती हैं—१. अनुकरण में अनुकर्ता

भाषा के कुछ तात्त्विक अंश को छोड़ देता है। २. ज्ञात या अज्ञातरूप में अपनी ओर से कुछ अंश जोड़ देता है। इस प्रकार भाषा में परिवर्तन की प्रक्रिया प्रचलित होती है। अनुकरण की अपूर्णता के कई कारण हैं—

(क) **वागिन्द्रिय की विभिन्नता**—प्रत्येक व्यक्ति की वागिन्द्रिय समान नहीं होती है। पुरुषों और स्त्रियों के उच्चारणावयवों में यह अन्तर स्पष्ट देखा जा सकता है। बालक, युवा और वृद्ध के उच्चारण अवयवों में बहुत विभिन्नता होती है। अतएव किसी की ध्वनि मोटी, किसी की पतली, किसी की सुरीली और किसी की बेसुरी होती है। वागिन्द्रिय में कोई दोष या न्यूनता होती है तो भाषण-ध्वनि भी प्रभावित होती है। ध्वनि की स्पष्टता वाग्यन्त्र पर निर्भर है। अतएव आचार्य पाणिनि ने पाणिनीय शिक्षा में आदेश दिया है कि वर्णों को अस्पष्ट और बहुत दबाकर न बोलें। मधुरता, स्पष्ट अक्षरोच्चारण, पदों का पृथक् प्रयोग, सस्वरता, शान्ति से उच्चारण और लयात्मकता, ये ६ पाठक या उच्चारणकर्ता के गुण हैं।

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडिताः ।
सम्यग् वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते ॥ (पा० शिक्षा ३१)
माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः ॥ (पा० शिक्षा ३३)

अग्निपुराण का कथन है कि निम्नलिखित व्यक्ति वाग्यन्त्र आदि के दोष के कारण स्पष्टरूप से वर्णोच्चारण नहीं कर पाते हैं—विकृत मुख वाले, लम्बे ओष्ठ वाले, अज्ञानग्रस्त, नाक से बोलने वाले, भावावेश के कारण गद्गद ध्वनि वाले या रुद्धकण्ठ और बद्धजिह्वा अर्थात् जिनकी जीभ पूरी खुली हुई नहीं है।

न करालो न लम्बोष्ठो नाव्यक्तो नानुनासिकः ।
गद्गदो बद्धजिह्वश्च न वर्णान् वक्तुमर्हति ॥ (अग्निपुराण)

(ख) **अनवधानता**—सावधानी से न सुनना भी अनुकरण की अपूर्णता का कारण है। वागिन्द्रिय की विभिन्नता अनुकरण का '**आंगिक पक्ष**' है और ध्यान से न सुनना, अस्पष्ट सुनना या कुछ अनसुना करना, यह अनुकरण का '**मानसिक पक्ष**' है। यदि शब्द या वाक्य सावधानी से नहीं सुना है, तो उसका अनुकरण भी त्रुटिपूर्ण होगा। ऐसे सदोष उच्चारण भाषा में परिवर्तन लाते रहते हैं।

(ग) **अशिक्षा**—शिक्षा के अभाव के कारण ग्रामीणजन, अर्धशिक्षित एवं अशिक्षित व्यक्ति ध्वनियों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते हैं। उनका अनुकरण सदा दोषयुक्त होता है। इससे भाषा में परिवर्तन होता है। अशिक्षा के कारण ब को व, व को ब, श को स, ष को स, क्ष को च्छ, ण को न आदि उच्चारण किया जाता है। जैसे—वार > बार, देश > देस, शरीर > सरीर, कृष्ण > किसन, कक्षा > कच्छा, छात्र > क्षात्र, क्षत्रिय > छत्रिय, गुण > गुन, सगुण > सगुन, निर्गुण > निरगुन आदि। विदेशी भाषा के शब्दों के अनुकरण में अशिक्षा के कारण असाधारण परिवर्तन हो जाते हैं, लार्ड > लाट, गार्ड > गाड या गारद, टाइम > टेम, लाइब्रेरी > रायबरेली, आर्ट्स कालेज > आठ कालेज, पोस्टकार्ड > पोसकाड,

आर्डर्ली > अर्दली, रिपोर्ट > रपट, इन्स्पेक्टर > सिपट्टर, कोर्ट इन्स्पेक्टर > कोट साहब, सिग्नल > सिंगल आदि। भर्तृहरि मानते हैं कि अशिक्षा आदि के कारण अपभ्रंश (अशुद्ध) शब्द चल पड़े हैं। भर्तृहरि का कथन है कि अशिक्षा आदि के द्वारा जो अशुद्ध शब्दों का प्रयोग किया जाता है, उन स्थानों पर विद्वान् श्रोता शुद्ध शब्दों को समझ लेते हैं।

एवं साधौ प्रयोक्तव्ये योऽपभ्रंशः प्रयुज्यते ।
तेन साधु-व्यवहितः कश्चिदर्थोऽभिधीयते ॥ (वाक्य० १-१५२)
दैवी वाग् व्यतिकीर्णेयमशक्तैरभिधातृभिः । (वाक्य० १-१५४)

(घ) **अज्ञान**—अशिक्षा के अतिरिक्त अज्ञान को पृथक् कारण कहा जा सकता है। अशिक्षितों के अनुकरण-दोष अशिक्षा के कारण क्षम्य हैं, परन्तु शिक्षितों में भी उच्चारण-सम्बन्धी अनेक दोष पाये जाते हैं। सुशिक्षित व्यक्तियों में भी बहुत से अज्ञानवश व-ब, श-स, य-ज, क्ष-छ, र-ड़ आदि का अन्तर नहीं कर पाते हैं। बहुत से शिक्षित व्यक्ति भी यजमान को जजमान, शरीर को सरीर, वोट को बोट, छात्र को क्षात्र, क्षत्रिय को छत्रिय, अधीन को आधीन, उपर्युक्त को उपरोक्त आदि प्रयोग करते हैं। अज्ञानमूलक ये अनुकरण भाषा में प्रचलित हो गये हैं।

(ङ) **लिपि की अपूर्णता**—प्रत्येक भाषा में कुछ विशिष्ट ध्वनियाँ हैं, जिनका शुद्ध और स्पष्ट लेखन दूसरी भाषा में संभव नहीं है। फलस्वरूप संस्कृत की टवर्ग ध्वनियाँ, अंग्रेज़ी जेड (z), अरबी की काकल्य ध्वनियाँ, जर्मन-फ्रेंच और रूसी भाषा की विभिन्न ध्वनियाँ दूसरी भाषा में ठीक-ठीक नहीं लिखी जा सकती हैं। विभिन्न संस्कृतियों के मिलने पर मूल भाषा की ध्वनियों में बहुत अन्तर आ जाता है। अंग्रेज़ी में शुद्ध राम, कृष्ण, आर्य, शुक्ल, मिश्र, गुप्त आदि शब्द Rama, Krishna, Arya, Shukla, Mishra, Gupta आदि लिखे जाने के कारण अब रामा (रामा स्टोर), कृष्णा (कृष्णाप्रसाद), आर्या (आर्यासमाज), शुक्ला, मिश्रा, गुप्ता आदि प्रचलित हो गये हैं।

(३) प्रयत्नलाघव (The Ease Theory ; Economy of Effort)

प्रयत्नलाघव का अर्थ है '**कम प्रयत्न करना**'। मानव की प्रवृत्ति है कि वह कम परिश्रम से अधिक लाभ प्राप्त करना चाहता है। यदि यह कहें कि 'कामचोरी' या आलस्य का ही परिष्कृत नाम 'प्रयत्नलाघव' है, तो विषय अधिक स्पष्ट हो जायेगा। जहाँ संक्षेप या लघुमार्ग (short cut) से काम चल जाय, वहाँ अधिक प्रयत्न क्यों किया जाये? 'सांख्यतत्त्वकौमुदी' में इसके लिए एक सुन्दर श्लोक दिया गया है कि—'यदि घर के कोने में ही मधु (शहद) मिल जाये, तो कौन मधु के लिए पहाड़ पर जायेगा? थोड़े से काम चल जाय तो कौन समझदार व्यक्ति अधिक परिश्रम करेगा?'

अर्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत् ।
इष्टस्यार्थस्य संसिद्धौ को विद्वान् यत्नमाचरेत् ॥
(सांख्य० का० १ की टीका)

ओटो येस्पर्सन ने प्रो० ह्विटनी (Whitney) का कथन उद्धृत किया है कि मानव

की प्रवृत्ति रही है कि वक्तव्य वाग्यन्त्र के लिए सुकर होना चाहिए। इसमें श्रम और समय की बचत भी होनी चाहिए।

The prevalent opinion among the older school was that the chief tendency was, in Whitney's words, "To make things easy to our organs of speech, to economize time and effort in the work of expression." —Otto Jespersen, Language, p. 261.

आलस्य, आरामतलबी, कामचोरी या यत्नलाघव की प्रवृत्ति भाषा में परिवर्तन के आभ्यन्तर कारणों में सबसे महत्त्वपूर्ण है। चाहे बालक हो या अध्यापक, मजदूर हो या लिपिक, काम करने के समय की सूचना को बड़ी अन्यमनस्कता से सुनता है, पर वही अवकाश की सूचना बड़ी तत्परता से सुनता है। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य में कम प्रयत्न करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक है। इसका सीधा प्रभाव भाषा पर भी पड़ता है। भाषा में ऐसे सैकड़ों शब्द संक्षिप्त रूप में प्रचलित हो गये हैं। व्यक्तिनाम प्रायः संक्षिप्त ही बोले जाते हैं—मदनमोहन > मदन, कपिलदेव > कपिल, रामचन्द्र > रामू, श्यामसुन्दर > श्याम, मोहनदास कर्मचन्द गाँधी > गांधीजी, बाल गंगाधर तिलक > तिलकजी, महर्षि दयानन्द सरस्वती > दयानन्दजी।

प्रयत्नलाघव को 'मुखसुख' भी कहते हैं। संक्षेपीकरण का तो यह गुरुमन्त्र (गुर) है। प्रयत्नलाघव से कितने ही नये शब्द चल पड़ते हैं। बहुलपक्ष दिवस > ब-दि > बदी (कृष्णपक्ष का दिन), शुक्लपक्ष दिवस > शुदि > सुदी (शुक्लपक्ष का दिन)। प्राचीन शिलालेखों, ताम्रपत्रों आदि में संक्षेप के लिए शुदि और ब-दि शब्द मिलते हैं। मीसा (Maintenance of Internal Security Act, आन्तरिक सुरक्षा क़ानून > आंसुका), डी०आई०आर० (Defence of India Rule, भारत सुरक्षा कानून), नेफा (North East Frontier Agencies) इसी संक्षेप के उदाहरण हैं।

प्रयत्नलाघव, मुख-सुख या सरलता की प्रवृत्ति के कारण ही बड़े शब्दों को छोटा करके बोलते हैं। पोस्टकार्ड > कार्ड, कृपया पन्ना उलटिए > कृ०प०उ०, टेलिफोन > फोन, न्यूज़ पेपर > पेपर (समाचार-पत्र), एयरोप्लेन > प्लेन (विमान), रेलवे ट्रेन > रेल, रेलवे स्टेशन > स्टेशन, मास्टर साहब > मास्साहब, दादाजी > दाजू (भाई, कुमायूँनी), भारतवर्ष > भारत। इसी प्रकार सरलता के लिए शब्दों के प्रथम अक्षर लेकर संक्षिप्त नाम प्रचलित हो जाते हैं। अंग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन आदि भाषाओं में यह प्रवृत्ति बहुत अधिक दृष्टिगोचर होती है। विज्ञान के इस युग में स्थान और समय की कमी के कारण छोटे एवं संक्षिप्त शब्द बहुत उपादेय हो गये हैं। फ्रेंच भाषा के समाचार-पत्रों में वर्गीकृत संक्षिप्त विज्ञापनों को समझने के लिए कोशग्रन्थ की सहायता अपेक्षित होती है। आजकल भारतवर्ष में भी संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। संयुक्त विधायक दल > संविद, काशी विश्व-विद्यालय > का०वि०वि०, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी > B.H.U., प्रयाग विश्व-विद्यालय > प्र०वि०वि०, उत्तर-प्रदेश > उ०प्र०, मध्यप्रदेश > म०प्र०। इसी प्रकार D.M. (डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट, जिलाधीश), S.D.M. (सब-डिविजनल मजिस्ट्रेट, परगनाधीश), D.E. (डाइरेक्टर ऑफ एजुकेशन, शिक्षानिदेशक > शि०नि०), U.N.

(युनाइटेड नेशन्स, राष्ट्रसंघ) आदि हैं। H.S., B.A., M.A., Ph.D., D.Phil., M.B.B.S. आदि उपाधियाँ प्रथम अक्षरों को लेकर प्रयुक्त होती हैं।

प्रयत्नलाघव के कारण अनेक प्रकार के ध्वनिपरिवर्तन होते हैं। जैसे—समीकरण, विषमीकरण, आगम, लोप, वर्ण-विकार, वर्ण-विपर्यय, मध्याक्षरलोप, स्वरभक्ति आदि। इनका विस्तृत विवेचन अध्याय ५ में किया गया है।

(४) प्रयोगाधिक्य

जिस प्रकार अन्य वस्तुएँ अधिक प्रयोग से घिस जाती हैं, उसी प्रकार भाषा में शब्द भी अधिक प्रयोग के कारण घिस जाते हैं और बहुत छोटे हो जाते हैं। यह भी प्रयत्नलाघव की प्रवृत्ति का एक रूप है। जैसे—उपाध्याय > ओझा > झा, चतुर्वेदी > चौबे, त्रिपाठी > तिवारी, द्विवेदी > दूबे, वन्द्योपाध्याय > बनर्जी, मुख्योपाध्याय > मुकर्जी, सत्य > सच्च > सच, घृत > घी, अभ्यन्तर > भीतर, अंगुलीयक > अंगूठी। हिन्दी में नामों के अन्त में लगने वाला आदरार्थक 'जी' शब्द 'उपाध्याय' का घिसा हुआ रूप है। कुछ विद्वान् 'जी' की उत्पत्ति 'आर्य' > अज्ज > अज्जी > जी शब्द से मानते हैं। संस्कृत के कारक-चिह्न और तिङ् प्रत्यय पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में घिसते हुए समाप्त हो गये हैं या नाममात्र शेष हैं। वयम् > अम्हे > हम, अस्माकम् > अम्हाणं > हमारा, युष्माकम् > तुम्हाणं > तुम्हारा, द्वौ > दो, त्रीणि > तीन, त्रयः > त्रै (पंजाबी), चत्वारि > चार, विंशतिः > बीस, सप्त > सत्त > सात, सप्ताशीति > सत्तासी। वर्तते > वट्टइ > वाटे (है, भोजपुरी), कुर्वन् वर्तसे > करत वाड़ > करताड़ (भोजपुरी, कर रहे हो)। भ्राता > भ्रा > प्रा (भाई, पंजाबी), अस्मान् नु > साँनु (हमको, पंजाबी), स्त्रैण > स्याँणि (स्त्री, कुमायूँनी), आदित्यवार > इतवार, बृहस्पतिवार > बीफे।

(५) भावातिरेक

प्रेम, क्रोध, शोक आदि भावों के अतिरेक (अधिकता) के कारण भी शब्दों का रूप बदल जाता है। जैसे—अधिक प्रेम-प्रदर्शनार्थ भाई > भइया, बाबू > बबुआ, बच्चा > बाचा या बचवा, जी > जिअरा (हृदय), राजेन्द्र > रज्जू, विजय > बिज्जू हो जाता है। क्रोधावेश में राम > रामू या रमुआ, चमार > चमरवा हो जाता है। शोकावेग में कर्म > करमवा फूट गइल (कर्म नष्ट हो गये), पुत्र > पुतवा क मुँह देख लेती (पुत्र का मुँह देख लेते)। भावातिरेक के कुछ अन्य उदाहरण हैं—माता > महतारी, बाप > बप्पा, आर्याजी > अइया या आजी (दादी), भाभीजी > भौजी, लघु > लहुरा (लघुवीर > लहुराबीर)।

(६) लयात्मकता

मानव-जीवन में लयात्मकता का भी बहुत महत्त्व है। समरूपता, एकरूपता या समानता की प्रवृत्ति सामान्यतया सुरुचिपूर्ण व्यक्तियों में पाई जाती है। वेश-भूषा में, सजावट में, वस्तुओं को यथास्थान लगाने आदि में यह ध्यान दिया जाता है कि किस रंग के साथ कौन-सा रंग खपता है—तदनुसार वेश-भूषा आदि पहनी जाती है। यही प्रवृत्ति

भाषा में भी पाई जाती है। किस मात्रा के साथ कौन-सी मात्रा ठीक जँचती है और किस वर्ण के साथ कौन-सा वर्ण अच्छा लगता है, इस आधार पर भी भाषा में परिवर्तन किये जाते हैं। यह लयात्मकता तीन रूपों में प्राप्त होती है—१. बलाघातात्मक लय (Stress Rhythm), २. स्वरात्मक लय (Pitch-Rhythm), ३. मात्रात्मक लय (Quantitative-Rhythm)।

१. बलाघातात्मक लय (बलाघात)—बोलने में किसी शब्द, वर्ण या ध्वनि पर अधिक बल दिया जाता है, किसी पर कम। भाषण में भी विशेष बात पर अधिक बल देना होता है, तो उसे जोर से बोलते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बलाघात वाली ध्वनि प्रबल हो जाती है और उसके आगे-पीछे वाली ध्वनि निर्बल हो जाती है। प्राकृत, अपभ्रंश आदि के काल में निर्बल ध्वनियों का लोप हो जाता है। संस्कृत में जिन स्वरों पर उदात्त होता है, उन्हें गुण या वृद्धि हो जाती है। यदि उन पर उदात्त नहीं होता है, तो उन्हें गुण नहीं होता है। जैसे—कृ > कारक, करण, कृति। प्रथम दो में वृद्धि या गुण है, तृतीय में गुण नहीं हुआ। चतुर् + ईय = तुरीय। य का अ उदात्त होने से च निर्बल हो गया, अत: उसका लोप होकर तुरीय (चतुर्थ) रूप बनता है। सर्व > सब, अब + ही > अभी, सब + ही > सभी, मयूर > मोर, मजदूर > मजूर, मजदूरी > मजूरी, उत्थान > उठना। अंग्रेज़ी में भी उदात्त-रहित दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाते हैं।[1] अन्य उदाहरण हैं—स्वर्णकार > सुनार, लौहकार > लोहार, चर्मकार > चमार।

२. स्वरात्मक लय (सुर)—छन्द के नियमों के अनुसार आरोह-अवरोह का ध्यान रखते हुए कहीं ह्रस्व को दीर्घ, कहीं दीर्घ को ह्रस्व, कहीं वर्णलोप किया जाता है। संस्कृत छन्द:शास्त्र का नियम है कि 'अपि माषं मषं कुर्यात्, छन्दोभङ्गं न कारयेत्' माष (उड़द) को मष कर दे, पर छन्द-भंग न करे। रामायण का एक दोहा लें—

बिनु गुर होइ कि ग्यान, ग्यान कि होइ बिराग बिनु ।
गावहिं बेद पुरान, सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ॥

(रामचरितमानस, उत्तर० ८९ क)

इसमें छन्द की आवश्यकता की पूर्ति के लिए बिना > बिनु, गुरु > गुर, क्या > कि, ज्ञान > ग्यान, वैराग्य > बिराग, पुराण > पुरान, भक्ति > भगति; स्वरात्मक लय के लिए भक्त > भगत, योग्य > जोग, युक्ति > जुगुति, में > महुँ हो जाते हैं। स्वरात्मक लय श्रि > अशिश्रियत् (लुङ् प्र० १, लिया), चुर् > अचूचुरत् (लुङ् प्र० १, चुराया), पट् + णिच् > अपीपठत् (पढ़ाया, लुङ् प्र० १) आदि द्वित्व वाले रूपों में दर्शनीय हैं।

३. मात्रात्मक लय (मात्राभेद)—लय के लिए मात्रा को लघु या गुरु कर लिया जाता है। जैसे—

पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा ।
जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा ॥ (राम० अयोध्या० ११९-४)

1. Nearly all unaccented vowels have been shortened.
—*Linguistic Cha.:ge*, Sturtevant, p. 60.

इसमें सीता > सिय, शीर्ष > सीसा, जननी > जननि, आशीष > असीसा है। कहीं ह्रस्व को दीर्घ किया है और कहीं दीर्घ को ह्रस्व।

(७) प्रमाद या असावधानी

प्रमाद या असावधानी के कारण कभी-कभी शब्दों को तोड़-मरोड़ दिया जाता है; कभी वर्ण-विपर्यय कर दिया जाता है; कभी अन्य अर्थ वाले शब्दों को अन्य अर्थ में प्रयुक्त कर दिया जाता है; कभी व्याकरण की दृष्टि में अशुद्ध शब्दों का प्रयोग कर दिया जाता है, जो कालान्तर में बद्धमूल होकर प्रचलित हो जाता है। जैसे—गुरु को गरु (भारी), उत्साह को उछाह, आश्रय > आसरे, चाकू > काचू, लखनऊ > नखलऊ, ज्योति > जोत, वैदिक कीनाश (कृषक) से किसान, बलीवर्द (बैल) से दो शब्द > बैल और बरधा। उपेक्षा > अपेक्षा, उपर्युक्त को उपरोक्त, शाप > श्राप। अशुद्ध प्रयोग—महत्ता को महानता, विद्वत्ता > विद्वानता, सौन्दर्य > सौन्दर्यता, श्रेष्ठ को श्रेष्ठतम, गरिष्ठ > गरिष्ठतम (बहुत भारी)। विद्वस् + ता > विद्वत्ता होगा, न कि विद्वानता। अतिशय अर्थ में इष्ठ होने पर तम नहीं लगेगा, अत: श्रेष्ठ होगा, श्रेष्ठतम अशुद्ध है।

(८) नवीनीकरण की प्रवृत्ति

मनुष्य की प्रवृत्ति है कि वह प्रत्येक वस्तु में कुछ नयापन लाना चाहता है, अत: जान-बूझकर अन्य भाषाओं के शब्दों को संस्कृत-निष्ठ या हिन्दी-निष्ठ आदि कर दिया जाता है। यह प्रवृत्ति अधिकांशत: प्रबुद्ध वर्ग में पायी जाती है। जैसे—मैक्समूलर को मोक्षमूलर, ऑक्सीजन (Oxygen) > ओषजन, नाइट्रोजन (Nitrogen) > नत्रजन, एकेडमी (Academy) > अकादमी, अरबी अफ़्यून (अफीम) > अहिफेन, तुर्क > तुरुष्क, चश्मा > चक्ष्मा, अलेक्जेण्डर > अलक्षेन्द्र, वकील > वाक्कील। पारिभाषिक शब्दों को अपनी भाषा के अनुरूप बनाने में यह प्रवृत्ति अधिक देखी जाती है। जैसे, भाषा-विज्ञान के शब्द मार्फीम (Morpheme) को मर्षिम या मर्फिम, मार्फ (Morph) > मर्ष, टेक्निकल > तकनीकी, लिंग्विस्टिक्स (Linguistics) > भाषिकी, फिज़िक्स (Physics) > भौतिकी।

(९) बौद्धिक स्तर

प्रत्येक वक्ता का बौद्धिक स्तर एक-सा नहीं होता है। बौद्धिक स्तर का विचारों पर साक्षात् प्रभाव पड़ता है। भाषा विचारों की अभिव्यक्ति है। बौद्धिक स्तर में अन्तर के कारण शब्दों के अर्थ में, विशेष रूप से अमूर्त अर्थ वाले शब्दों के अर्थ में, विशेष अन्तर हो जाता है। एक के लिए सन्ध्या, हवन, दान, पुण्य उत्तम कार्य हैं, दूसरे के लिए केवल ढोंग। धर्म, अधर्म, पाप, पुण्य, स्वर्ग, नरक, प्रायश्चित्त, यमराज, काल, अत्याचार, अनाचार, चरित्र-हत्या आदि शब्द प्रत्येक व्यक्ति के बौद्धिक स्तर के अनुकूल पृथक् अर्थ बताते हैं। मांसाहारी का बोधक पिशाच राक्षस-वाचक हो गया। धर्म-कर्म पाखण्ड-युक्त होने पर

धरम-करम हो गये। ब्राह्मण (विद्वान्) बिगड़कर बाम्हन हो गया। बौद्धिक स्तर की न्यूनता के कारण शुक्ल > शुकुल, सुकुल हो गया और मिश्र > मिसिर, जाति-पंक्ति > जात-पाँत।

(१०) जातीय मनोवृत्ति

प्रत्येक जाति की कुछ विशेषताएँ होती हैं और वे विशेषताएँ उस जाति की भाषा में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इसका सीधा प्रभाव भाषा पर भी पड़ता है। आर्य-जाति प्रगतिशील रही है, अतः संस्कृत में गत्यर्थक धातुओं की संख्या बहुत अधिक है—गम्, व्रज्, इ, अट् आदि। यह अधिक गतिशीलता संस्कृत में ध्वनियों की संख्या में अधिकता का कारण है। अंग्रेज़ी में २६ अक्षर हैं, संस्कृत में ४८। पाणिनीय शिक्षा के अनुसार संस्कृत में ६३ या ६४ वर्ण माने गये हैं। '**त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः।**' (पा० शिक्षा ३) फ्रांसीसियों में कोमलता है, अतः उनकी भाषा में सुकुमारता है। जर्मनों में कठोरता, परिश्रमशीलता अधिक है, अतः उनकी भाषा में कठोरता है। अंग्रेज़ों में समय-निष्ठा मुख्य है, अतः अंग्रेज़ी के धातुरूपों में काल (Tenses) पर बहुत बल है। 'मैं जाता हूँ' और 'मैं जा रहा हूँ' में अन्तर है—I go, I am going. फ्रेंच में रेस्त्राँ (होटल) है, वही अंग्रेज़ी में रेस्टॉरेन्ट (Restaurant) है। जातीय मनोवृत्ति के अन्तर से भाषा के शब्दों और उच्चारण पर बहुत प्रभाव पड़ता है। आर्यजाति धर्मप्रधान है, अतः संस्कृत में धर्म-कर्म से संबद्ध सैकड़ों शब्द हैं। इसके विपरीत अंग्रेज़ी आदि में धर्म आदि से संबद्ध शब्द बहुत न्यून हैं। संस्कृत और हिन्दी में सैकड़ों देवता हैं, अंग्रेज़ी आदि में God (गॉड, ईश्वर) अकेला ही सब काम कर लेता है। जातीय भेद-भाव के कारण भारत में प्राकृत, अपभ्रंश के अतिरिक्त अनेक म्लेच्छ भाषाएँ प्रचलित रही हैं। भारतवर्ष में भाषाओं की संख्या बहुत अधिक होने का कारण जातीय मनोवृत्ति और जातीय भेद-भाव है।

(११) सादृश्य या मिथ्या-सादृश्य

भाषा-परिवर्तन के आभ्यन्तर कारणों में सादृश्य प्रमुख कारण है। इसका विशेष विवरण आगे दिया गया है।

३.५. (ख) बाह्य कारण

जो भाषा को बाहर से प्रभावित करते हैं, उन्हें बाह्य कारण कहा जाता है। बाह्य कारण भौगोलिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि हैं।

(१) भौगोलिक प्रभाव

भूगोल या जलवायु का भाषा पर प्रभाव पड़ता है या नहीं, इस विषय पर पर्याप्त मतभेद रहा है। जर्मन भाषाशास्त्री हाइनरिश मेयर बेन्फी (Heinrich Meyer Benfey) और कोलित्स (Collitz) आदि ने भाषा के परिवर्तन में भौगोलिक प्रभाव को विशेष महत्त्व दिया है।[1] उनका कहना है कि उच्च जर्मन में वर्ण-परिवर्तन का कारण

1. Otto Jespersen : *Language*, pp. 256-57.

भौगोलिक परिस्थितियाँ हैं। उनका कथन है कि मनुष्य पर जलवायु का प्रभाव पड़ता है। पर्वत या मरुस्थल में रहने वाले अधिक पुरुषार्थी होते हैं, समस्थल में रहने वाले कम श्रम-निष्ठ होते हैं। अतएव उच्च जर्मन में वर्ग के तृतीय वर्ण के स्थान पर प्रथम वर्ण हो जाते हैं और प्रथम वर्ण के स्थान पर महाप्राण वर्ण अर्थात् ग द ब को क त प और क त प को ह थ फ। ओटो येस्पर्सन ने इस सिद्धान्त पर आपत्ति की है कि हृष्ट-पुष्ट होना या फेफड़े मजबूत होना भाषा में परिवर्तन का कारण नहीं है। भाषा का आधार वाग्यन्त्र या भाषणेन्द्रियाँ हैं।

इस विषय में यह कहना उचित है कि ओटो येस्पर्सन की आपत्ति सर्वथा ठीक नहीं है। जलवायु फेफड़ों को प्रभावित करती है। फेफड़ों से निकली हुई वायु ध्वनियों का कारण है। फेफड़ों में जितना बल होगा, उतनी ही पुष्ट या अपुष्ट ध्वनि भी निकलेगी। ध्वनि का मोटा-पतला होना, सुरीला-बेसुरा होना, कर्णसुखद या कर्णकटु होना, कठोर या मृदु होना, फेफड़ों से आने वाली वायु पर निर्भर होता है। अतः भूगोल या जलवायु को भी कारण मानना उचित है। भौगोलिक अन्तर से मनुष्यों की आकृति में अन्तर मिलता है; पशु-पक्षियों में अन्तर मिलता है और वृक्ष-वनस्पतियों में भी अन्तर मिलता है। अतः मानव-निर्मित भाषा में अन्तर होना अवश्यंभावी है।

एक मूलभाषा से वैदिक संस्कृत और अवेस्ता भाषाएँ निकली हैं। दोनों में भौगोलिक भेद से ध्वनियों में अन्तर हो गया है। संस्कृत का स् अवेस्ता में ह् हो जाता है। सप्त > हप्त, सिन्धु > हिन्दु, असि > अहि (है)। भ का ब और ध का द हो जाता है। भ्राता > ब्रात, मधु > मदु। भौगोलिक भेद या स्थान-भेद से शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी, अर्धमागधी, ये प्राकृत भाषा के भेद हैं। भौगोलिक भेद के कारण ही एक मूल भाषा से निकलने पर भी पंजाबी, मराठी, गुजराती, हिन्दी, भोजपुरी आदि पृथक्-पृथक् हैं। महर्षि पतंजलि ने भौगोलिक भेद से भाषा में अन्तर को स्वीकार किया है। उनका कथन है कि स्थान-भेद, देश-भेद से भाषा-भेद हो जाता है। दरांती को पूर्व में 'दाति' कहते हैं, उत्तर में 'दात्र'। संस्कृत में 'जाना' अर्थ में गम् धातु है, कम्बोज की भाषा में शव् धातु इसी अर्थ में है। संस्कृत में शव मृत या लाश के लिए है।

'**सर्वे देशान्तरे**'। **एतस्मिंश्चातिमहति शब्दस्य प्रयोगविषये ते ते शब्दास्तत्र तत्र नियतविषया दृश्यन्ते। तद्यथा-शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाषितो भवति, विकार एवैनमार्या भाषन्ते शव इति। दातिर्लवनार्थे प्राच्येषु, दात्रमुदीच्येषु॥** (महाभाष्य आ० १)

अंग्रेज़ी और जर्मन भाषा—ये दोनों भाषाएँ ट्यूटानिक या जर्मन भाषा-परिवार से निकली हैं। निम्न जर्मन (Low German) से अंग्रेज़ी निकली है और उच्च जर्मन (High German) से जर्मन भाषा। पर्वतीय भाग में अर्थात् उच्च भाग में बोले जाने के कारण 'उच्च जर्मन' कही जाती है और निम्नस्थल, समभूमि या मैदान में बोले जाने के कारण वहाँ की जर्मन भाषा 'निम्न जर्मन' कही जाती है। भौगोलिक प्रभाव के कारण किस प्रकार निम्न जर्मन और अंग्रेज़ी की ध्वनियाँ उच्च जर्मन में भिन्न हो गई हैं, यह नीचे के उदाहरणों से स्पष्ट है—

ध्वनि-परिवर्तन	अंग्रेज़ी शब्द	उच्च जर्मन शब्द	अर्थ
द् को त्	Drink (ड्रिंक)	Trinken (त्रिंकेन)	पीना
,,	Do (डू)	Tun (तुन)	करना
थ् को द्	North (नार्थ)	Nord (नोर्द)	उत्तर
प् को फ्	Up (अप)	Auf (आउफ)	ऊपर
,,	Open (ओपेन)	Offen (ओफेन)	खोलना
फ् को ब्	Wife (वाइफ)	Weib (वाइब)	पत्नी
ट् को त्स्	Two (टू)	Zwei (त्स्वाई)	दो
ट् को स्स्	Foot (फूट)	Fuss (फुस्स)	पैर
क् को ख्	Book (बुक)	Buch (बुख)	पुस्तक

सम और उपजाऊ भूमि में भाषा का प्रचार-प्रसार अधिक होता है, क्योंकि लोगों को एक-दूसरे से मिलने का अवसर अधिक मिलता है। विभिन्न जातियाँ भी वहाँ मिलती हैं; जिससे भाषा-परिवर्तन अधिक और सरलता से होता है। पर्वतीय, मरुस्थलीय और दुर्गम स्थानों की भाषा में परिवर्तन और प्रसार कम होता है। ऐसी भाषाएँ अलग-अलग रहकर स्वतंत्र रूप में विकसित होती हैं। यातायात की सुविधा के कारण नैनीताल-अल्मोड़ा की कुमायूँनी भाषा प्रायः एक-सी है, परन्तु पृथक् होने के कारण गढ़वाल की भाषा में बहुत अन्तर है। पर्वतीय भूमि होने के कारण यूनानी की स्वतंत्र अनेक उपभाषाएँ हो गई हैं। भौगोलिक कारणों को भौतिक कारण या भौतिक वातावरण भी कहा जाता है।

(२) ऐतिहासिक प्रभाव (राजनीतिक प्रभाव)

भाषा के परिवर्तन में इतिहास का प्रभाव बहुत स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि इतिहास में राजनीति, धर्म, संस्कृति आदि सभी का ग्रहण है, तथापि ऐतिहासिक प्रभाव से विशेष अभिप्राय राजसत्ता परिवर्तन, क्रान्ति, विप्लव, आक्रामक जाति का आगमन, व्यापारिक सम्बन्ध आदि से है। अतः इसे राजनीतिक प्रभाव भी कहा जाता है।

भारतवर्ष में शक, हूण, आभीर, यवन, फ्रांसीसी, पुर्तगाली और अंग्रेज़ आदि आये। जो शासक के रूप में आये, उन्होंने अपनी भाषा के शब्दों का प्रयोग बढ़ाया। परतन्त्र राष्ट्र अपने शासक की शब्दावली को स्वेच्छया, अनिच्छया या बलात् स्वीकार कर लेता है। इसका परिणाम यह होता है कि वे शब्द भी भाषा में चालू हो जाते हैं और भाषा में परिवर्तन आ जाता है।

भारतीय भाषाओं का भी यही इतिहास है। जो शासक जाति भारत में आयी है, उसने अपना प्रभाव भाषा पर छोड़ा है। फलस्वरूप हमें हिन्दी में फारसी, अरबी, तुर्की, अंग्रेज़ी आदि के सैकड़ों शब्द प्राप्त होते हैं। इनमें से कुछ शब्द भाषा में ऐसे घुल-मिल गये हैं कि उन्हें विदेशी शब्द कहना कठिन होता है। विदेशी भाषा के प्रभाव ने ध्वनि, शब्द, अर्थ और वाक्य-विन्यास पर भी अपना प्रभुत्व दिखाया है। क़, ख़, ग़, ज़ आदि ध्वनियाँ संस्कृत या हिन्दी में नहीं थीं, परन्तु अरबी, अंग्रेज़ी आदि के प्रभाव के कारण ये ध्वनियाँ भी हिन्दी में आ गई हैं।

हिन्दी में प्रयुक्त कुछ विदेशी शब्द ये हैं—फारसी के फ़ुर्सत, ईमान, इनाम, मैदान आदि; अरबी के किताब, मकतब (पाठशाला), हवा, हुनर, क़त्ल, क़ातिल, मसजिद, मुस्लिम, इस्लाम, सलाम, मालिक, मुल्क, जुल्म, ज़ालिम, मुन्तज़िम (व्यवस्था करनेवाला), इन्तज़ाम (व्यवस्था), मतलब (अर्थ), मुतालिबा (अधिकार माँगना); तुर्की भाषा के कुली, गलीचा, चाकू, तोप, बहादुर, काबू, कैंची आदि; अंग्रेज़ी के स्टेशन, पोस्टऑफिस, ऑफिस, ऑफिसर, प्रिन्टिंग, प्रिन्टिंग प्रेस, स्कूल, कॉलेज, यूनिवर्सिटी, हाउस, टैक्स, रोड आदि।

कुछ स्थानों पर अरबी, अंग्रेज़ी आदि का व्याकरण भी कुछ अंशों में अपना लिया गया है। जैसे—मकान > मकानात, किताब > कुतुब (पुस्तकें), कुतुबखाना (पुस्तकालय), किताब > किताबत (लिखना), जुल्म (अत्याचार) > ज़ालिम (अत्या-चारी), कागज़ > कागज़ात (बहुवचन), लेटर (पत्र) > लेटर्स (पत्रों), ड्यूटी > ड्यूटीज़, स्कूल > स्कूल्स, कॉलेज > कॉलेजेज़। दूसरी ओर इनका हिन्दी रूपान्तरण होता है। हिन्दी का व्याकरण प्रयुक्त होता है। जैसे—स्कूलों, कॉलेजों, प्रेसों, मकानों, किताबों, ज़ालिमों आदि। ऑफिसर > अफसर, लैन्टर्न > लालटेन, रिपोर्ट > रपट, ग्लास > गिलास आदि।

अंग्रेज़ी भाषा का भी ऐसा ही इतिहास है। अंग्रेज़ी भाषा में अपने शब्द कम हैं, लैटिन, ग्रीक, फ्रेंच आदि के शब्द बहुसंख्या में हैं। अतः इसे 'भानुमती का पिटारा' कह सकते हैं। इंग्लैंड रोमन साम्राज्य का अंग था, अतः उसमें लैटिन के बहुत से शब्द और प्रत्यय आदि आये हैं। १०वीं शताब्दी में इंग्लैंड पर फ्रांसीसी नार्मन जाति का अधिकार था, अतः सैकड़ों फ्रेंच शब्द अंग्रेज़ी में आये हैं। सांस्कृतिक महत्त्व के कारण ग्रीक भाषा के सैकड़ों शब्द अंग्रेज़ी में आये हैं।

इस प्रकार ऐतिहासिक प्रभाव भाषा में परिवर्तन लाता है।

(३) सांस्कृतिक प्रभाव (धार्मिक प्रभाव)

संस्कृति समाज का जीवन है। संस्कृति ही किसी देश को उन्नत या अवनत करती है। भाषा पर भी इसका प्रभाव अमिट होता है। सांस्कृतिक प्रभाव विभिन्न संस्थाओं द्वारा, महापुरुषों द्वारा या विभिन्न संस्कृतियों के सम्मेलन से पड़ता है। विश्व में अनेक सांस्कृतिक क्रांतियाँ हुई हैं, जिन्होंने उन देशों को विशेष रूप से प्रभावित किया है। भारतवर्ष में इस प्रकार की सांस्कृतिक क्रांति का सूत्रपात महर्षि दयानन्द ने १८७५ ई० में आर्यसमाज की स्थापना के द्वारा किया।

(क) सांस्कृतिक संस्थाएँ—सांस्कृतिक संस्थाएँ जहाँ धार्मिक विचार प्रस्तुत करती हैं, वहाँ वे भाषा-विषयक भी अपना निश्चित मत प्रस्तुत करती हैं। ईसाई अंग्रेज़ी को, मुसलमान उर्दू, अरबी या फारसी को विशेष प्रश्रय देते हैं। आर्यसमाज ने १९वीं शती के अन्त में और २०वीं शती के पूर्वार्ध में हिन्दी भाषा पर अमिट प्रभाव छोड़ा है। महर्षि दयानन्द ने अन्य भाषाओं के शब्दों के स्थान पर संस्कृत-निष्ठ हिन्दी पर बल दिया। सभी आर्य-संस्थाओं और आर्य-विद्वानों ने इस नियम का पालन किया। परिणामस्वरूप हिन्दी

में संस्कृत-निष्ठ शब्दावली बहुत बड़ी मात्रा में प्रयुक्त होने लगी। पंजाब में हिन्दी भाषा के प्रचार का पूरा श्रेय आर्यसमाज को है।

(ख) संस्कृतियों का मिलन—विभिन्न संस्कृतियों के मिलने से भाषा के जीवन में नया रूप आ जाता है। भारत में अनेक संस्कृतियों का मिलन हुआ है। जैसे—आस्ट्रिक (आग्नेय) और द्रविड़, आर्य और द्रविड़, आर्य और यवन, आर्य और इस्लाम, आर्य और यूरोपीय संस्कृति। इसका परिणाम यह हुआ है कि भारतीय भाषाओं में उपर्युक्त सभी संस्कृतियों के सैकड़ों शब्द प्रचलन में आ गये हैं। आग्नेय (आस्ट्रो-एशियाटिक, जिसमें मुण्डा आदि भाषाएँ हैं) परिवार के संस्कृत में प्रचलित कुछ शब्द ये हैं—मातंग (हाथी), लवंग (लौंग), अंगना (स्त्री), अलाबु (लौकी), उन्दुरु (चूहा), कदली (केला), कर्पास (कपास), जिम् > जेमन (जीमना, भोजन करना), ताम्बूल (पान), मरिच (मिर्च), लांगल (हल), सर्षप (सरसों)। इसी प्रकार द्रविड़-परिवार की भाषाओं के सैकड़ों शब्द संस्कृत में प्रचलित हो गये हैं। जैसे—अगुरु (अगर), अनल (आग), अर्क (धतूरा), कटु (कड़वा), कठिन (कठोर), कानन, कुटिल, कुण्डल, कुन्तक, कुवलय, कूर्द् (कूदना), कोण, खल (दुष्ट, खलिहान), चतुर (कुशल), चन्दन, चुम्ब् (चूमना), तूल (रुई), दण्ड (लाठी), नीर (जल), पण्डित (विद्वान्), पालि (पंक्ति), पिण्ड (ढेला), बिडाल (बिलाव), मयूर (मोर), मषि (स्याही), माला, मीन (मछली), वलय (चूड़ी), वल्ली (बेल), शव (मुर्दा), शूर्प (सूप) आदि।

(४) वैयक्तिक प्रभाव

महापुरुष भी भाषा को बहुत प्रभावित करते हैं। महात्मा गांधी के प्रभाव के कारण स्वदेशी-आन्दोलन, हिन्दी-आन्दोलन, स्वाधीनता-आन्दोलन आदि चले। इनके द्वारा हिन्दी भाषा को बहुत अधिक बल मिला, आर्यभाषा हिन्दी के प्रचार के लिए उन्होंने अनेक संस्थाएँ भी प्रचलित कीं। गोस्वामी तुलसीदास ने हिन्दी के साथ ही अवधी को, सूरदास ने हिन्दी के साथ ब्रजभाषा को बहुत अधिक प्रभावित किया है। हिन्दी के प्रचार में तुलसीकृत रामायण का बहुत योगदान है। कबीर मिश्रित भाषा-प्रयोग के उन्नायकों में प्रमुख हैं।

(५) सामाजिक प्रभाव

भाषा समाज का दर्पण है। समाज की उन्नति और अवनति के साथ भाषा में भी विकास और ह्रास होता है। समाज में कभी क्रान्ति है, कभी शान्ति; कभी युद्ध है, कभी विप्लव; कभी धार्मिक आन्दोलन है, कभी राष्ट्रीय; कभी विजय है, कभी पराजय। भाषा पर भी इसका पूरा प्रभाव पड़ता है। शान्ति के समय कला, साहित्य, संगीत, धर्म और दर्शन की उन्नति होती है, उसी प्रकार युद्ध के समय वीरकाव्य, शूर-गाथा, रणनीति, शस्त्रविद्या और सैन्यशिक्षा की उन्नति होती है। शान्ति के समय धर्म, दर्शन और कला आदि के सैकड़ों नये शब्दों का अभ्युदय होता है तथा युद्धकाल में वीरकाव्य और सैन्यशिक्षा आदि से संबद्ध सैकड़ों नये शब्दों का जन्म होता है।

भारतवर्ष में विभिन्न विदेशी जातियों के आगमन से रहन-सहन आदि के भेद के साथ भाषा-भेद बहुत हुआ है। अपभ्रंशकाल का पूरा साहित्य इस भाषा-परिवर्तन का उदाहरण है। शक, हूण, पारसी, मुसलमान, ईसाई लोगों के आगमन ने सहस्रों नये शब्द दिये हैं। कचहरी, अदालत, नायब, तहसीलदार, जच्चा, मेहतर-मेहतरानी, बीबी, गुलाम, कोर्ट, कलक्टर, गवर्नर, डी०एम०, एस०डी०एम०, टाउन, सिटी, रोड, सिनेमा, वायोलिन, वायरलेस आदि शब्द इसी के प्रतीक हैं। युद्धकाल में संक्षेप और संकेतचिह्नों की प्रवृत्ति बहुत बढ़ती है। अतएव एन०सी०सी०, पी०ए०सी०, सी०आर०पी०, बी०एस०एफ०, सी०आई०डी०, नेफा, पेप्सू, डी०आई०जी०, आई०जी०, एस०पी०, एस०एस०पी०, श्री-नॉट-श्री आदि संक्षिप्त नामों की परम्परा चल पड़ती है।

(६) साहित्यिक प्रभाव

भाषा के परिवर्तन में साहित्य का भी बहुत बड़ा योगदान है। साहित्य जन-मानस की भावनाओं को प्रस्तुत करता है। जनमानस अपनी बोल-चाल की भाषा में साहित्य चाहता है। प्राचीन समय में उच्चवर्ग की भाषा संस्कृत का साम्राज्य था। महावीर और गौतम बुद्ध ने लोकभाषा को अपनाया और सारा साहित्य अर्धमागधी और पालि भाषा में दिया। पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के सहस्रों ग्रन्थ प्राप्य हैं। इन्होंने भाषा को नया रूप दिया। भाषा जनता के लिए दूर की वस्तु न होकर चिर-परिचित वस्तु हो गई। हिन्दी भाषा के मध्ययुग में कबीर, जायसी, सूर, तुलसी ने भक्ति-आन्दोलन में लोकभाषा का प्रयोग करके लोकतन्त्र की स्थापना की। बिहारी, मतिराम, देव और घनानन्द ने जहाँ शृंगार की रस-धारा बहायी; वहाँ भूषण ने वीर-रस सरसाया और वृन्द, गिरिधर कविराज, बाबा दीनदयाल गिरि आदि ने नीति, अन्योक्ति आदि की रचनाएँ प्रस्तुत कीं। हिन्दी खड़ी बोली की रूक्षता को छायावादी और रहस्यवादी कवियों ने दूर किया, जिनमें जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त और महादेवी वर्मा विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रेमचन्द के उपन्यास भाषा के सरस प्रवाह के उत्तम उदाहरण हैं। सुभद्राकुमारी चौहान भूषण के तुल्य वीरता की मूर्ति हैं। इनकी ओजस्विनी भाषा ने जनमानस को आन्दोलित किया है। इस प्रकार साहित्य भाषा के परिवर्तन में असाधारण योग देता है।

(७) वैज्ञानिक प्रभाव

यह विज्ञान का युग है। विज्ञान ने विश्व के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। भाषा भी विज्ञान के प्रभाव से दूर नहीं है। आज विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिवर्ष सैकड़ों नये शब्द आ रहे हैं। नये आविष्कारों और अनुसंधानों के साथ नयी शब्दावली बनती जा रही है। प्राचीन समय में जो कार्य शताब्दियों में होता था और जितनी शब्दावली सैकड़ों वर्षों में बढ़ती थी, उतनी शब्दावली अब १०-२० वर्षों में बढ़ती जा रही है। अन्य विषयों को छोड़कर केवल भाषा-विज्ञान और भाषा-शास्त्र को ही लें, तो प्रतिवर्ष सैकड़ों नये शब्द भाषा-शास्त्र में आते जा रहे हैं। इससे भाषा में असाधारण परिवर्तन उपस्थित होता जा रहा है। विज्ञान का दूसरा प्रभाव यह भी है कि भाषा में पारिभाषिक (Technical) शब्दों की

संख्या बढ़ती जा रही है और संक्षेप एवं संकेत-शब्दों की ओर अभिरुचि बढ़ गई है। अब सैकड़ों संकेत शब्द प्रचलित हो गये हैं। जैसे, Skt = संस्कृत, Lat = लैटिन, Gk = ग्रीक, S = Sentence, वा = वाक्य, NP = Noun Phrase, संप = संज्ञापदबन्ध, VP = Verb Phrase, क्रिप = क्रिया-पदबन्ध, V = Verb, क्रि = क्रिया, N = Noun, सं = संज्ञा, Det = Determiner, नि = निर्धारक, मिसं = मिश्र संकेत, Aux = Auxiliary, स = सहायक। भाषाशास्त्र की आधुनिक पुस्तकों में ये संकेतचिह्न अत्यन्त प्रचलित हो गये हैं। उपयोगिता की दृष्टि से इन्हें स्मरण कर लेना चाहिए।

(८) सभ्यता का प्रभाव

समाज का बाह्य रूप सभ्यता का प्रतिबिम्ब है। समाज के बाह्य रूप में कृषि, उद्योग, व्यापार, वाणिज्य, वेश-भूषा, भवन, कला, शिल्प, मनोरंजन के साधन आदि सभी चीजें आती हैं। विज्ञान की उन्नति के साथ सभ्यता का विकास विशेष प्रगति से हो रहा है। कृषि, उद्योग, व्यापार, वेश-भूषा आदि में सैकड़ों नयी वस्तुएँ निकल रही हैं। नये यन्त्र, नये औजार, नयी मशीन, नये शिल्प, नयी पोशाकें, नये खेल, नये मनोरंजन के साधन आदि प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। प्रत्येक वस्तु के लिए नया नाम निकाला जा रहा है। कुछ पुराने शब्द भी नये अर्थों का बोध करा रहे हैं, पर नये शब्दों की रचना की गति बहुत वेग से चल रही है। इस प्रकार भाषा का शब्दकोश बहुत बढ़ रहा है। आमोद-प्रमोद, प्रसाधन आदि की वस्तुएँ नित्य नये नाम से आ रही हैं। इस प्रकार भाषा में नव-शब्द-निर्माण की प्रक्रिया उग्ररूप से चल रही है। दूसरी ओर सभ्यता के प्रबल प्रवाह में अनुपयोगी या अप्रयुक्त शब्द बहुत वेग से वीरगति को प्राप्त हो रहे हैं। वे केवल कोशग्रन्थों की शोभा ही बढ़ा रहे हैं। 'योग्यतमावशेष' (Survival of the fittest), इस वैज्ञानिक नियम के अनुसार भाषा में भी योग्यतम शब्द शेष रह जाते हैं और अनुपयोगी शब्द नष्ट हो जाते हैं।

३.५. (ग) सादृश्य (मिथ्या सादृश्य)

भाषा के विकास या परिवर्तन में सादृश्य का बहुत महत्त्व है। यह सादृश्य वास्तविकता पर निर्भर न होकर अंधानुकरण पर निर्भर होता है। अतः इसे 'मिथ्या सादृश्य' कहा जाता है। विश्व की प्रत्येक भाषा में इस नियम की महिमा दृष्टिगोचर होती है। महत्त्व की दृष्टि से इसे आभ्यन्तर और बाह्य, दोनों कारणों से पृथक् रखा जाता है। इसका प्रभाव आभ्यन्तर और बाह्य दोनों रूपों में दिखाई देता है। यह ध्वनि, शब्द, अर्थ और वाक्य-रचना सभी को प्रभावित करता है।

द्वादश = द्वि या द्वा + दश में द्वा शब्द में आ की मात्रा ठीक है, पर एकादश = एक + दश में आ नहीं होना चाहिए था। द्वादश के साथ के कारण मिथ्यासादृश्य से एकदश > एकादश हो गया। करिणा = करिन् + आ में 'ना' या 'णा' ठीक है, क्योंकि शब्द के अन्तिम अक्षर न् में आ जुड़ गया है, पर अग्निना = अग्नि + आ, भानुना = भानु + आ में न् कहाँ से आ गया? इसका कोई उत्तर नहीं है। करिणा, दण्डिना, हस्तिना आदि के साम्य पर अग्निना,

भानुना आदि सभी इकारान्त और उकारान्त शब्दों में तृतीया एकवचन में 'ना' लगने लगा। यह सादृश्य का ही माहात्म्य है। 'पाश्चात्य' का विलोम शब्द 'पौरस्त्य' है, परन्तु पश्चिम का विलोम शब्द पूर्व लेकर 'पौर्वात्य' एक नया शब्द गढ़ लिया गया है। 'निर्गुण' के सादृश्य पर 'सगुण' को 'सर्गुण' भी लिखा जाता है। पंचम, सप्तम, अष्टम में अन्त में 'म' प्रत्यय है, उसी के साम्य पर 'षष्ठ' को 'षष्ठम' भी लिखने लगे हैं। वस्तुतः पौर्वात्य, सर्गुण, षष्ठम ये अशुद्ध प्रयोग हैं। मालीय, शालीय, भवदीय आदि के सादृश्य पर राष्ट्र > राष्ट्रीय शब्द का प्रचलन है। शुद्ध शब्द 'राष्ट्रिय' है। वृद्धाच्छः (४-२-११४) से छ > ईय प्रत्यय करके राष्ट्रीय शब्द भी बनाया जा सकता है।

अंग्रेज़ी भाषा में भी इसी प्रकार सादृश्य (Analogy) के आधार पर अनेक शब्द प्रचलित हैं। Sing (गाना) > Sang, Sung ठीक हैं, इसी के साम्य पर Ring (घंटी बजना) > Rang, Rung भी भूतकाल और Past Participle में बनने लगे। इसी प्रकार Shall > Should, Will > Would, 'शुड' और 'वुड' रूपों में व्यंजन L 'शैल' और 'विल' के ल् के आधार पर ल् आ सकता है, परन्तु Can > Could (कुड) में ल् कहाँ से आ गया? यह शुड, वुड के सादृश्य पर L युक्त 'कुड' हो गया।

प्रो० आर०एच० रोबिन्स (R.H. Robins)[1] का कथन है कि Help, Climb और Snow के भूतकाल के प्रचलित रूप थे Holp, Clomb और Snew, परन्तु सादृश्य के आधार पर इनके रूप Helped, Climbed और Snowed बनने लगे हैं। Cow (काउ, गाय) का वास्तविक बहुवचन Kine (काइन) है, पर सादृश्य के आधार पर Cows (काउज़) प्रचलित हो गया है।

प्रो० स्टुर्टवेंट (E.H. Sturtevant)[2] ने अंग्रेज़ी के Male (मेल, पुरुष) और Female (फीमेल, स्त्री) का इतिहास बताया है कि ये दोनों शब्द फ्रेंच भाषा के Male और Femelle से बने हैं। फ्रेंच के दोनों शब्दों में कोई साक्षात् सम्बन्ध नहीं है, परन्तु अंग्रेज़ी में Male के सादृश्य पर Femelle के e को a करके Female बना लिया गया है। इस सादृश्य के प्रभाव के कारण ही अंग्रेज़ बच्चे Foot > Foots, फुट > फीट (पैर > पैरों) के स्थान पर फुट का बहुवचन फुट्स बोलते हैं। शुद्ध प्रयोग Feet (फीट) है। Ox (ऑक्स, बैल) > Oxen (ऑक्सन, बैलों) रूप बहुवचन में बनता है, परन्तु Oxes भी बच्चे बोलते हैं। इसी प्रकार बच्चे और अशिक्षित लोग Bring > Brung ब्रिंग (लाना) का ब्रंग रूप भूतकाल में बोलते हैं। इसका रूप Brought (ब्रॉट, लाया) होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सादृश्य या मिथ्या सादृश्य भाषा-परिवर्तन के कारण के रूप में विश्व की सभी भाषाओं पर अपना प्रभुत्व रखता है।

*

1. R.H. Robins, *General Linguistics*, pp. 316-17.
2. E.H. Sturtevant, *Linguistic Change*, pp. 38-40.

रहा है। वर्तमान भाषाशास्त्रियों ने इस विषय पर विस्तृत मनन-चिन्तन किया है।

प्राचीन भाषाशास्त्रियों का मत—संस्कृत के प्राचीन भाषाशास्त्रियों ने इस विषय पर अपने विचार प्रकट किए हैं। निरुक्तकार यास्क मुनि, महाभाष्यकार पतंजलि और काशिकाकार वामन-जयादित्य ने ध्वनि-परिवर्तन की कुछ दिशाओं का उल्लेख किया है—

निरुक्तकार यास्क (ईसापूर्व ८वीं शती) ने आदि-शेष, आदि-लोप, अन्तलोप, उपधालोप, उपधा-परिवर्तन, वर्णलोप, द्विवर्णलोप, आदि-विपर्यय, अन्त-विपर्यय, आद्यन्तविपर्यय, अन्तिमवर्ण-परिवर्तन, वर्णोपजन (वर्ण का आगम) आदि वर्ण-परिवर्तन की दिशाओं का उल्लेख किया है।

'प्रत्तम् अवत्तम् इति धात्वादी एव शिष्यते। अथाप्यस्तेर्निवृत्तिस्थानेषु आदिलोपो भवति-स्तः, सन्तीति। अथापि अन्तलोपो भवति-गत्वा, गतम् इति। अथापि उपधालोपो भवति-जग्मतुः, जग्मुः इति। अथापि उपधा-विकारो भवति-राजा, दण्डी इति। अथापि वर्णलोपो भवति-तत्त्वा यामि इति। अथापि द्विवर्णलोपः-तृच इति। अथापि आदि-विपर्ययो भवति—ज्योतिः, घनः, बिन्दुः, वाट्य इति। अथापि आद्यन्तविपर्ययो भवति-स्तोकाः, रज्जुः,"। अथापि अन्तव्यापत्तिर्भवति ओघः, मेघः। अथापि वर्णोपजनः-आस्थत्, द्वारः, भरूजा इति।

(निरुक्त अध्याय २, पाद १)

काशिकाकार वामन-जयादित्य (७वीं शती ई०) में निरुक्त की ५ विशेषताएँ बताते हुए १. वर्णागम, २. वर्ण-विपर्यय, ३. वर्णविकार, ४. वर्णनाश, ५. धातु का अर्थान्तर से योग, का उल्लेख किया है।

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च, द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्।।

(काशिका० ६-३-१०६)

पतंजलि (ईसापूर्व २य शती) ने महाभाष्य में १. वर्णव्यत्यय, २. वर्णनाश, ३. वर्ण-उपजन (वर्णागम) और ४. वर्णविकार, इन चार ध्वनिपरिवर्तनों का सोदाहरण उल्लेख किया है।

वर्णव्यत्ययापायोपजनविकारेषु अर्थदर्शनात्।

वर्ण-व्यत्यये—कृतेस्तर्कः, कसेः सिकताः, हिंसेः सिंहः।" अपायो लोपः-हतः, घ्नन्ति, घ्नन्तु, अघ्नन्।" उपजन आगमः—लविता, लवितुम्।" विकार आदेशः—घातयति, घातकः। (महाभाष्य, नवाह्निक, आ० २, वार्तिक ७६ पर)

१. वर्ण-व्यत्यय या वर्ण-विपर्यय। जैसे—कर्त > तर्क, कसित > सिकता, हिंस > सिंह। २. वर्णलोप। जैसे—हतः में न् लोप, घ्नन्ति में हन् के अ का लोप। ३. वर्णागम। जैसे—लविता में इ का आगम। ४. वर्णविकार। जैसे—हन् > घातक, ह् को घ्।

५.१९. ध्वनि-परिवर्तन की दिशाएँ

आधुनिक भाषाविज्ञान में इस विषय का अधिक विस्तार से विवेचन हुआ है।

इसका संक्षिप्त विवेचन नीचे दिया जा रहा है। इन परिवर्तनों का मुख्य कारण प्रयत्नलाघव या मुख-सुख है।

(१) समीकरण (Assimilation)

जब दो विषम ध्वनियाँ एकत्र होती हैं तो एक ध्वनि दूसरी ध्वनि को प्रभावित करके अपने सदृश बना लेती हैं। यह समीकरण दो प्रकार का होता है—

(क) पुरोगामी समीकरण (Progressive Assimilation)—इसमें पूर्ववर्ती ध्वनि आगे की दूसरी ध्वनि को अपने सदृश बनाती है। संस्कृत में रषाभ्यां नो णः (अष्टा० ८-४-१), रदाभ्यां निष्ठातो नः० (अष्टा० ८-२-४२), ष्टुना ष्टुः (अष्टा० ८-१-४१) आदि सूत्र समीकरण प्रस्तुत करते हैं। जैसे—

विष् + नुः = विष्णुः, पुष् + तः = पुष्टः। चक्र > चक्का, अग्नि > अग्गि, पक्व > पक्का, पत्र > पत्ता।

(ख) पश्चगामी समीकरण (Regressive Assimilation)—इसमें परवर्ती ध्वनि पूर्ववर्ती ध्वनि को अपने सदृश बनाती है। जैसे—

शर्करा-शक्कर	धर्म-धम्म	सप्त-सत्त
वल्कल-वक्कल	तत् + लीन-तल्लीन	गल्प-गप्प

(२) विषमीकरण (Dissimilation)

यह समीकरण का उल्टा है। इसमें दो सम ध्वनियों में से एक ध्वनि विषम रूप धारण करती है। उच्चारण की सुविधा और अर्थ की स्पष्टता के लिए ऐसा किया जाता है। जैसे—

काक-काग	कंकण-कंगन	पुरुष-पुलिस
मुकुट-मउर (मौर)	गुरु-गरु	षष्-षट्

यह विषमीकरण स्वर और व्यंजन दोनों में होता है। संस्कृत में लिट् लकार, लुङ् लकार और सन् प्रत्यय में कुहोश्चुः (७-४-६२), अभ्यासे चर्च (८-४-५४) सूत्रों से विषमीकरण का ही कार्य होता है। जैसे—ककार > चकार, अगीगणत् > अजीगणत्, किकीर्षति > चिकीर्षति, भुभूषति > बुभूषति।

(३) आगम (Augment, Intrusion)

उच्चारण की सुविधा के लिए शब्दों के आदि, मध्य या अन्त में कुछ ध्वनियाँ जोड़ दी जाती हैं, इन्हें आगम कहते हैं। इसके मुख्य रूप से तीन भेद हैं—(क) आदि स्वरागम या प्रागुपजन, (ख) मध्यस्वरागम या स्वरभक्ति, (ग) अन्त्य स्वर (अक्षर) आगम।

(क) आदि-स्वरागम, प्रागुपजन (Prothesis)—कभी-कभी उच्चारण की सुविधा के लिए कुछ व्यंजनों, विशेषरूप से संयुक्त व्यंजनों, से प्रारम्भ होने वाले शब्दों के आदि में एक स्वर का आगम हो जाता है, इसको आदि-स्वरागम या प्रागुपजन (प्राक्-पहले, उपजन-आगम) या Prothesis (प्रो-पहले, थीसिस-रखना) कहते हैं। पंजाबी और ग्रामीण भाषाओं में इसका प्रयोग अधिक दिखाई देता है। कुछ स्थानों पर आदि-

व्यंजनागम के भी उदाहरण मिलते हैं। जैसे—

आदि-स्वरागम						आदि-व्यंजनागम		
स्त्री	-	इस्त्री,	स्कूल	-	इस्कूल	अस्थि	-	हड्डी
स्नान	-	अस्नान,	स्टेशन	-	इस्टेशन	ओष्ठ	-	होठ
स्तुति	-	अस्तुति,	प्लेटो	-	अफलातून	उल्लास	-	हुलास

आदि-अक्षरागम भी मिलता है। जैसे—गुंजा-घुँघची, लैटिन—Schola > फ्रेंच—Ecole (एकल, स्कूल)।

(ख) मध्य-स्वरागम, स्वरभक्ति (Anaptyxis)—संयुक्त व्यंजनों के उच्चारण में होने वाली असुविधा को दूर करने के लिए बीच में किसी स्वर के आगम को मध्य-स्वरागम कहते हैं। स्वर की भक्ति (भाग, अंश) लगने के कारण इसे स्वरभक्ति (Anaptyxis) और संयुक्त में व्यवधान डालने के कारण युक्त-विप्रकर्ष या विप्रकर्ष (Diaeresis) कहते हैं। मध्य-स्वरागम के तुल्य मध्य-व्यंजनागम और मध्य-अक्षरागम के भी उदाहरण मिलते हैं। संयुक्त व्यंजनों को सरल बनाने के लिए उत्तर-प्रदेश के लोग प्रायः आदिस्वरागम का आश्रय लेते हैं और पंजाबी लोग मध्य-स्वरागम का आश्रय लेते हैं। जैसे—

मध्य-स्वरागम						मध्य-व्यंजनागम		
स्टेशन	-	सटेशन	प्रचार	-	परचार	सुनर	-	सुन्दर
धर्म	-	धरम	कर्म	-	करम	सुनरी	-	सुन्दरी
भक्त	-	भगत	प्रसाद	-	परसाद	वानर	-	बन्दर
पंक्ति	-	पंगत	हुक्म	-	हुकुम	शाप	-	श्राप

मध्य-अक्षरागम, जैसे—ताम्र—तांबड़ा (मराठी), खल—खरल, आलस—आलकस।

संस्कृत में प्राप्त होने वाले द्विविध रूप स्वर्ण-सुवर्ण, पृथ्वी-पृथिवी, स्वर्-सुवर् आदि मध्य-स्वरागम या स्वरभक्ति के ही उदाहरण हैं।

वैदिक संस्कृत में भी स्वरभक्ति के उदाहरण मिलते हैं। जैसे—इन्द्र > इन्दर, दर्शत > दरशत भी बोला जाता है। वर्षतु को वरिषतु (या वऋषतु) और वरेण्यम् > वरेणिअम् भी पढ़ा जाता है। ऋग्वेद प्रातिशाख्य में इसको स्वरभक्ति कहा गया है। यह छोटी स्वर-मात्रा होती है। आधी या उससे भी छोटी मात्रा होने से इसको लिखा नहीं जाता था।[1] अवेस्ता भाषा में भी यह प्रवृत्ति देखी जाती है—उपरि > Upairi, भरति > Baraiti।

(ग) अन्त्य-स्वरागम—अन्त में सुविधा के लिए कोई स्वर जोड़ा जाता है। संस्कृत के हलन्त शब्दों को प्राकृत में अकारान्त कर देते हैं। अंग्रेजी आदि में अन्तिम व्यंजन के बाद कोई स्वर जोड़ देते हैं। जैसे—

महत्	-	महन्त	गच्छत्	-	गच्छन्त	ग्राम	-	गँवई
हनुमत्	-	हनुमन्त	ज्वलत्	-	ज्वलन्त	पत्र	-	पतई

1. स्वरभक्तिः पूर्वभागक्षराङ्गम्। द्राघीयसी सार्धमात्रा। अर्धोनान्या। (ऋग्वेद प्रातिशाख्य १-३२, ३३, ३५)

जर्मन Agon—अंग्रेजी Agony, Marl—Marle। कहीं पर अन्त में अक्षर भी लगता है। जैसे—वधू—वधूटी, बाल—बालक, बाला—बालिका, मुख—मुखड़ा, ढप—ढपली।

(४) लोप (Elision)

कभी-कभी मुख-सुख, प्रयत्नलाघव या उच्चारण में शीघ्रता, स्वराघात आदि के कारण कुछ ध्वनियों का लोप हो जाता है। ये लोप तीन प्रकार के होते हैं—१. स्वरलोप, २. व्यंजन-लोप, ३. अक्षरलोप। आदि, मध्य और अन्त भेद से ये तीनों भेद तीन प्रकार के होते हैं। जैसे—

आदि-स्वरलोप (Aphesis)	मध्य-स्वरलोप (Syncope)	अन्त्य-स्वरलोप
अभ्यन्तर—भीतर	राजन् + आ—राज्ञा	घर—घर्
अनाज—नाज	जगम् + अतुः—जग्मतुः	राम—राम्
अगर—गर	Do not—Don't	शिला—सिल्
अपूप—पूप, पूआ	Storey—Story	
आदिव्यंजनलोप	**मध्यव्यंजनलोप**	**अन्त्यव्यंजनलोप**
स्थाली—थाली	कति—कई	उष्ट्र—ऊँट
स्थान—थान	रात्रि—रात	निम्ब—नीम
स्कन्ध—कंधा	पंक्ति—पाँत	उपाध्याय—उपधिया
श्मशान—मसान	ब्राह्मण—बाम्हन	दण्डिन्—दण्डी
आदि-अक्षरलोप	**मध्य-अक्षरलोप**	**अन्त्य-अक्षरलोप**
उपाध्याय—झा	भाण्डागार—भंडार	माता—माँ
आदित्यवार—इतवार	पर्यंकग्रन्थि—पलत्थी	व्यंग्य—व्यंग

(५) समाक्षर-लोप (Haplology)

इसको अक्षर-लोप और सम-ध्वनिलोप भी कहते हैं। जहाँ पर दो समान ध्वनियाँ एक के बाद दूसरी आती हैं, वहाँ पर उच्चारण की सुविधा के लिए उनमें एक का लोप कर दिया जाता है। यह नाम अमेरिकन भाषाविज्ञानी प्रो० ब्लूमफील्ड (Bloomfield) ने दिया है। यह दो शब्दों को मिलाकर बना है—१. ग्रीक शब्द Haplous = एक, २. ग्रीक शब्द Logos = शब्द, अर्थात् दो ध्वनियों के स्थान पर एक ध्वनि का शेष रहना। जैसे—

शेववृध—शेवृध	वितस्ति—बित्ता, बीता	स्वर्गगंगा—स्वर्गंगा
जहीहि—जहि	नाककटा—नकटा	खरीददार—खरीदार
शष्पपिंजर—शष्पिंजर	हिरण्यमय—हिरण्मय	त्रि + ऋच—तृच

(६) वर्ण-विपर्यय (Metathesis)

इसको विपर्यय, वर्ण-व्यत्यय, स्थान-विपर्यय या स्थान-परिवर्तन भी कहते हैं। यह

दो शब्दों को मिलकर बना है—Meta—परिवर्तन, Thesis—ग्रीक, Tithemi = स्थान। कभी-कभी किसी शब्द में आने वाले स्वर या व्यंजन का स्थान असावधानी के कारण या जानबूझकर बदल देते हैं। वर्ण-परिवर्तन प्राचीनकाल से प्रचलित है। निरुक्त आदि में भी इसके उदाहरण मिलते हैं।

कृत् > कर्त-तर्क	स्नान-नहाना	प्रत्यभिज्ञान-पहचान
हिंस् > हिंस-सिंह	लखनऊ-नखनऊ	चाकू-काचू
सृज् > सर्ज-रज्जु	मतलब-मतबल	वाराणसी-बनारस
अम्लिका-इमली	पहुँचना-चहुँपना	ब्राह्मण-बाम्हन

आद्यांश-विपर्यय (Spoonerism)—आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ० स्पूनर (W.A. Spooner) इस प्रकार की त्रुटि प्रायः करते थे। अतः वर्ण-विपर्यय को Spoonerism स्पूनरिज्म भी कहते हैं। उन्होंने एक छात्र से—You have wasted a whole term. (तुमने पूरा सत्र नष्ट कर दिया है,) के स्थान पर कहा कि You have tasted a whole worm. (अर्थात् तुमने पूरे कीड़े का स्वाद लिया)। waste को taste और term को worm कह गए।

(७) महाप्राणीकरण (Aspiration)

कभी-कभी अल्पप्राण ध्वनियों को मुखसुख के लिए महाप्राण बोला जाता है। जैसे—

गृह-घर	परशु-फरसा	धृष्ट-ढीठ
वाष्प-भाप	शुष्क-सूखा	वेष-भेष

(८) अल्पप्राणीकरण (De-aspiration)

कभी-कभी उच्चारण की सुविधा के लिए महाप्राण ध्वनियों को अल्पप्राण कर देते हैं। जैसे—

धधार-दधार	स्वादिष्ठ-स्वादिष्ट	बुध् + धि-बुद्धि
धधौ-दधौ	शुध् + धि-शुद्धि	सिन्धु-हिन्दु

(९) घोषीकरण (Vocalization)

कभी-कभी मुख-सुख के लिए अघोष ध्वनियों को घोष कर दिया जाता है। जैसे—

शाक-साग	काक-काग	शती-सदी
नकद-नगद	कंकण-कंगन	एकादश-एगारह

(१०) अघोषीकरण (De-vocalization)

इसमें घोष ध्वनियों को अघोष कर देते हैं। जैसे—

तद् + पर-तत्पर	सं + भृ (भर्)-confer	मदद-मदत
उद् + कट-उत्कट	प्र + भृ (भर्)-prefer	वाग् + पति-वाक्पति

(११) अनुनासिकीकरण (Nasalization)

मुख-सुख के लिए अनुनासिक-रहित शब्दों को भी अनुनासिक-युक्त कर देते हैं। यह अनुनासिकता दो प्रकार की है—

१. **सकारण**—शब्द में नासिक्य ध्वनि थी, अतः विकसित रूप में अनुनासिक आया। चन्द्र-चाँद, अन्धकार-अँधेरा, कम्पन-काँपना।

२. **अकारण**—शब्द में नासिक्य ध्वनि न होने पर भी विकसित रूप में अनुनासिकता आ जाती है। जैसे—

सर्प-साँप	अक्षि-आँख	भ्रू-भौं	निद्रा-नींद
उष्ट्र-ऊँट	अश्रु-आँसू	इष्टका-ईंट	उच्च-ऊँचा

(१२) ऊष्मीकरण (Assibilation)

कुछ ध्वनियों को ऊष्म ध्वनि में परिवर्तित कर दिया जाता है। जैसे—केन्टुम् वर्ग की भाषाओं की क् ध्वनि सतम् (शतम्) वर्ग की संस्कृत और अवेस्ता भाषा में स या श ऊष्म ध्वनि के रूप में प्राप्त होती है। जैसे—centum (केन्टुम्)-शतम्, octo (ओक्टो)-अष्ट।

(१३) संधि-कार्य

कतिपय शब्द विकसित होने पर मध्यगत व्यंजनों के लोप होने से निरन्तर अनेक स्वर-ध्वनि-युक्त हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में उनमें संधि-कार्य हो जाता है। जैसे—

नयन > नइन-नैन	अवतार-औतार	शत-सौ
वचन > वइन-बैन	उपल-ओला	सपत्नी-सौत

(१४) मात्रा-भेद

प्रयत्नलाघव के लिए कभी दीर्घ स्वर को ह्रस्व कर देते हैं और कभी ह्रस्व को दीर्घ। जैसे—

वानर-बन्दर	आराम-अराम	प्रियतम-पीतम	अद्य-आज
आभीर-अहीर	आलाप-अलाप	पुत्र-पूत	भक्त-भात

५.२०. विशिष्ट ध्वनि-परिवर्तन

(१) अपिनिहिति, समस्वरागम (Epenthesis)

अपिनिहिति या समस्वरागम स्वरभक्ति (Anaptyxis) का ही एक रूपान्तर है। स्वरभक्ति या मध्यस्वरागम में संयुक्त व्यंजनों के बीच में स्वर का आगम हो जाता है। अपिनिहिति या समस्वरागम में संयुक्त व्यंजनों का होना आवश्यक नहीं है। इसमें शब्द में विद्यमान ध्वनि के अनुरूप ही एक स्वर (इ या उ) का आगम हो जाता है। अवेस्ता भाषा की यह प्रमुख विशेषता है। जैसे—

इकाई — III

86

पदविज्ञान (रूपविज्ञान)
(Morphology)

Extra

प्रकृति-प्रत्ययैर्मिश्रं, सार्थक-ध्वनि-संगतम् ।
रूप-निर्माण-संबद्धं, पद-विज्ञानमिष्यते ॥१॥
भाषाविशेष-संबद्धो लघिष्ठः सार्थको ध्वनिः ।
बद्ध-मुक्त-गुणैर्युक्तो रूपिमः कथितो बुधैः ॥२॥ (कपिलस्य)

६.१. पद और वाक्य

भाषा की सार्थक इकाई वाक्य है। यह वाक्य भी भाषा का एक अवयव मात्र होता है, परन्तु व्यवहार की दृष्टि से इसे ही इकाई मानकर कार्य किया जाता है। वाक्य में पद और पदों में वर्ण होते हैं। विचार करने से ज्ञात होता है कि पदों के प्रत्येक वर्ण का कोई अर्थ नहीं होता है। जैसे—रामः के र् आ म् अः का अलग-अलग कोई अर्थ नहीं है, इसी प्रकार वाक्य में प्रयोग के बिना पदों (रामः आदि) का भी कुछ अर्थ नहीं है। कोषग्रन्थों में दिए गये शब्द, तबतक सार्थक नहीं होते, जबतक उनका किसी वाक्य में प्रयोग नहीं होता है। केवल 'राम' या 'पुस्तक' कहने से कोई अर्थ स्पष्ट नहीं होता है। रामः पुस्तकं पठति, राम पुस्तक पढ़ता है, यह वाक्य है। इसमें वाक्य में प्रयोग के कारण रामः, पुस्तकम् और पठति सार्थक होते हैं। इसीलिए वाक्य को ही सार्थक इकाई माना जाता है। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में यह भाव स्पष्ट रूप से दिया है—

पदे न वर्णा विद्यन्ते वर्णेष्ववयवा इव ।
वाक्यात् पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन ॥ (वाक्यपदीय, १-७३)

महाभाष्यकार पतंजलि का भी मत है कि वास्तविक सत्ता वाक्य की है, पदों की नहीं। पद-विभाजन जन-साधारण को समझाने का एक उपाय है।[1] वाक्यों से पदों को निकाल कर समझाया जाता है कि यह कर्ता है, यह कर्म है, यह क्रिया है, इत्यादि। भर्तृहरि ने इस विश्लेषण की प्रक्रिया को पारिभाषिक नाम 'अपोद्धार' (विश्लेषण) दिया है। अपोद्धार से ही वाक्य के प्रत्येक पद का अर्थ बताया जाता है और प्रत्येक पद में प्रकृति-प्रत्यय का बोध कराया जाता है।[2]

---

१. आह चैवं भाष्यकारः। तस्मान्मन्यामहे पदान्यसत्यानि एकमभिन्न-स्वभावकं वाक्यम्। तदबुधबोधनाय पदविभागः कल्पित इति। (पुण्यराज, वाक्यपदीय, २-५७ की टीका)

२. यथा पदे विभज्यन्ते प्रकृति-प्रत्ययादयः।
अपोदधारस्तथा वाक्ये पदानामुपवर्ण्यते॥ (वाक्यपदीय, २-१०)

६.२. पद और शब्द

पद या रूप (Form) और शब्द (Word) को सामान्यतया एकार्थक समझा जाता है, परन्तु यह भूल है। सार्थक मूलरूप को 'शब्द' कहते हैं। इसे संस्कृत में 'प्रातिपदिक'[1] या 'प्रकृति' कहा जाता है। कोशग्रन्थों में ये सार्थक शब्द या प्रातिपदिक मिलते हैं। इनके द्वारा वस्तु, व्यक्ति या क्रिया का बोध कराया जाता है।[2]

शब्द के भेद—शब्द प्रकृति और प्रत्यय के संयोग से बना है या नहीं, इस आधार पर संस्कृत और हिन्दी में शब्दों के तीन भेद किए गये हैं—**(१) रूढ**—जिनमें प्रकृति और प्रत्यय को स्पष्ट रूप से अलग नहीं किया जा सकता है, जैसे—मणि, रत्न, नूपुर, आढ्य, स्थूल आदि। **(२) यौगिक**—जो प्रकृति और प्रत्यय के संयोग से बने हैं, जैसे—कृ+तृ=कर्तृ, कर्ता, कृ+अक=कारक। भूत+इक=भौतिक। धनवान्, बलवान्, श्रीमान् आदि। **(३) योगरूढ**—जो शब्द यौगिक होते हुए भी किसी विशेष अर्थ में रूढ हो जाते हैं, उन्हें योगरूढ कहते हैं, जैसे—सरसिज, पंकज आदि। तालाब या कीचड़ में उत्पन्न होने वाला, यह यौगिक अर्थ है, परन्तु ये शब्द कमल के अर्थ में रूढ हैं। रूढ शब्दों को 'अव्युत्पन्न प्रातिपदिक' और यौगिक शब्दों को 'व्युत्पन्न प्रातिपदिक' कहते हैं। पाणिनि ने रूढ शब्दों के अतिरिक्त यौगिक शब्दों को भी प्रातिपादिक मानने के लिए नियम दिया है—

कृत्-तद्धित-समासाश्च। (अष्टा०, १-२-४६)

कृत-प्रत्ययान्त, तद्धित-प्रत्ययान्त और समासयुक्त पद भी प्रतिपादिक होते हैं, अत: इनसे भी सुप् प्रत्यय होंगे। इस प्रकार सभी सार्थक शब्दों को प्रातिपादिक कहा जाएगा।

पद और शब्द में अन्तर

सामान्यतया पद और शब्द को एकार्थक समझा जाता है, परन्तु भाषा-विज्ञान और व्याकरण की दृष्टि से ये दोनों शब्द भिन्न अर्थ वाले हैं।

सार्थक ध्वनि-समूह को 'शब्द' कहते हैं। संस्कृत में इसे 'प्रातिपदिक' कहते हैं। इसे मूलरूप समझना चाहिए। कोई भी शब्द जबतक पद नहीं बन जाएगा, उसका प्रयोग नहीं हो सकता है। पद बनाने के लिए शब्द में कुछ विशेष अर्थों के बोधक प्रत्यय लगाए जाते हैं। इनके लगाने पर वह शब्द प्रयोग के योग्य होता है। इसलिए संस्कृत में नियम है—

'न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या, नापि केवलः प्रत्ययः।' 'अपदं न प्रयुञ्जीत'।

(महाभाष्य)

अर्थात् न केवल प्रकृति (मूलशब्द, धातु) का प्रयोग करना चाहिए और न केवल प्रत्यय का। अपद (शब्द को पद बनाए बिना) का प्रयोग न करे। इस प्रकार इसका अन्तर यह होता है—

१. अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्। (अष्टाध्यायी, १-२-४५)

२. येनोच्चारितेन सास्नालांगूल-ककुद-खुर-विषाणिनां संप्रत्ययो भवति स शब्दः।

(महाभाष्य आह्निक -१)

शब्द	पद
मूल शब्द (प्रकृति, धातु, प्रातिपदिक)	प्रकृति+प्रत्यय=पद

प्रकृति से दो प्रकार के प्रत्यय होकर रूप बनते हैं—

१. सुवन्त—प्रकृति या प्रातिपदिक+सुप् प्रत्यय, जैसे, रामः=राम+सु (स्)। सभी संज्ञा और विशेषण शब्दों से सुप् प्रत्यय लगते हैं। उपसर्ग और अव्ययों के बाद भी सुप् लगते हैं, परन्तु उनका लोप हो जाता है।

२. तिङन्त—धातुओं से तिङ् प्रत्यय (ति, तः, अन्ति आदि) लगते हैं। धातु+तिङ् प्रत्यय=तिङन्त। जैसे पठति=पठ्+अ+ति (वह पढ़ता है)। धातुओं से तिङ् प्रत्यय लगते हैं। तिङ् प्रत्यय लगने पर ही उनका प्रयोग हो सकता है। संस्कृत में—राम गम् (राम जाना) का प्रयोग नहीं हो सकता है, क्योंकि इनमें पद बनाने वाले प्रत्यय सुप् और तिङ् नहीं लगे हैं।

सुप् और तिङ्—(१) शब्दों के अन्त में लगने वाले कारक चिह्नों (case endings) सु, औ, जस् (:, औ, अः आदि) को सुप् कहते हैं। ये कर्ता, कर्म, करण आदि कारकों तथा वचन (एकवचन, द्विवचन, बहुवचन) को बताते हैं।

(२) धातुओं के अन्त में लगने वाले काल (Tense) और वृत्ति (Mood) के बोधक तिः, तः, अन्ति आदि (Terminations) को तिङ् कहते हैं। इनसे काल, वृत्ति, वाच्य (कर्तृ, कर्म, भाववाच्य) और वचन आदि का बोध कराया जाता है।

हिन्दी में सुप् के स्थान पर स्वतन्त्र कारक चिह्न (को, ने, से, का, पर आदि) लगाए जाते हैं। क्रिया या धातु में कालवाचक चिह्न (ता, ते, है, हूँ, गा, गे आदि) लगाये जाते हैं। 'राम जाना' का प्रयोग न होकर प्रयोग होगा—राम जाता है, राम गया, राम जाएगा आदि।

कृत और तद्धित प्रत्यय—सुप् और तिङ् के साथ ही कृत् और तद्धित प्रत्ययों का ज्ञान भी आवश्यक है।

(१) कृत् प्रत्यय (Primary suffixes)—धातु+कृत् प्रत्यय=कृदन्त शब्द। ये धातु के अन्त में जुड़ते हैं। इनके लगाने से संज्ञा शब्द बन जाते हैं और उनसे सुप् प्रत्यय होते हैं। कृ+तृ=कर्तृ, कर्ता (करनेवाला), कृ+तव्य=कर्तव्य, कृ+अक=कारक, रम्+घञ् (अ)=राम, दिव्+घञ् (अ)=देव। इनसे पहले उपसर्ग भी लग जाते हैं, जैसे—हृ+घञ् (अ)=हार, विहार, संहार, आहार, प्रहार आदि।

(२) तद्धित प्रत्यय (Secondary Suffixes)—सभी संज्ञा शब्दों (कृत् प्रत्यय आदि लगाकर बने हुए शब्दों) से विभिन्न अर्थों में तद्धित प्रत्यय होते हैं। ये भी संज्ञा शब्द होते हैं। इनसे सुप् प्रत्यय होते हैं। ये पुत्र, उत्पन्न होना, संबद्ध, भाव आदि अर्थों को बताते हैं। जैसे—दशरथ+इ=दाशरथि (दशरथ का पुत्र), देव+इक=दैविक (देव-सम्बन्धी), वाराणसी+एय=वाराणसेय (वाराणसी में होनेवाला), मृदु+ता=मृदुता (मृदुत्व) आदि।

कृत् और तद्धित प्रत्ययों से बने हुए अधिकांश शब्दों का प्रयोग संज्ञा शब्दों के तुल्य होता है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि विश्व की अनेक भाषाओं में शब्द और पद में अन्तर नहीं है, जैसे—एकाक्षर या अयोगात्मक चीनी भाषा में प्रत्येक शब्द स्वतंत्र है।

वाक्य की परिभाषा—पतंजलि ने महाभाष्य में वाक्य के ५ लक्षण दिए हैं[1]—१. एक क्रिया-पद वाक्य है। २. अव्यय, कारक और विशेषण से युक्त क्रिया-पद वाक्य है। ३. क्रिया-विशेषण-युक्त क्रिया-पद वाक्य है। ४. विशेषण-युक्त क्रिया-पद वाक्य है। ५. क्रियापद-रहित संज्ञा-पद भी वाक्य होता है। जैसे—तर्पणम् (तर्पण करो), पिण्डीम् (ग्रास खाओ)। मीमांसकों, नैयायिकों और साहित्यशास्त्रियों ने साकांक्ष पद-समूह को 'वाक्य' माना है।[2] आचार्य विश्वनाथ ने 'आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति से युक्त पद-समूह को वाक्य माना है।'[3]

आचार्य 'भर्तृहरि' ने अपने पूर्ववर्ती वैयाकरणों और दार्शनिकों के मतों का संग्रह 'वाक्यपदीय' में करते हुए वाक्य की निम्नलिखित परिभाषाएँ दी हैं :—[4]

(१) क्रिया-पद को वाक्य कहते हैं।
(२) क्रिया-युक्त कारकादि के समूह को वाक्य कहते हैं।
(३) क्रिया एवं कारकादि-समूह में रहनेवाली 'जाति' वाक्य है।
(४) क्रियादि-समूह-गत एक अखण्ड शब्द (स्फोट) वाक्य है।
(५) क्रियादि-पदों के क्रम-विशेष को वाक्य कहते हैं।
(६) क्रियादि के बुद्धिगत समन्वय को वाक्य कहते हैं।
(७) साकांक्ष प्रथम पद को वाक्य कहते हैं।
(८) साकांक्ष पृथक्-पृथक् सभी पदों को वाक्य कहते हैं।[5]

पतंजलि और थ्रॉक्स—ईसा से पूर्व भाषाशास्त्रीय तत्त्व-चिन्तकों में भारत में 'पतंजलि' (१५० ई० पू० के लगभग) और यूरोप में 'डियोनिसियस थ्रॉक्स' (प्रथम शताब्दी ई० पू०) का नाम उल्लेखनीय है। दोनों ही आचार्यों ने वाक्य की परिभाषा इस प्रकार दी है—**'पूर्ण अर्थ की प्रतीति कराने वाले शब्द-समूह को वाक्य कहते हैं।'**

---

१. (क) एकतिङ्। (महाभाष्य २-१-१)
(ख) आख्यातं साव्ययकारकविशेषणं वाक्यम्। सक्रियाविशेषणं च। आख्यातं सविशेषणम्। (महाभाष्य २-१-१)
(ग) महाभाष्य १-१-४४
२. (क) अर्थैकत्वादेकं वाक्यं साकांक्षं चेद् विभागे स्यात्। (मीमांसा० २-१-४६)
(ख) पदसमूहो वाक्यम् अर्थसमाप्तौ। (वात्स्यायन, मंजूषा, पृ० १)
(ग) मिथ: साकांक्षशब्दस्य व्यूहो वाक्यम्। (शब्दशक्तिप्रकाशिका, श्लोक १३)
३. वाक्यं स्याद् योग्यताकांक्षासत्तियुक्त: पदोच्चय:। (सा० दर्पण २-१)
४. आख्यातशब्द: संघातो जाति: संघातवर्तिनी।
एकोऽनवयव: शब्द: क्रमो बुद्ध्यनुसंहति:॥
पदमाद्यं पृथक् सर्वपदं साकांक्षमित्यपि।
वाक्यं प्रति मतिर्भिन्ना बहुधा न्यायवादिनाम्॥ (वाक्यपदीय २-१, २)
५. इन मतों की विस्तृत व्याख्या के लिए देखें—लेखककृत अर्थविज्ञान और व्याकरण-दर्शन, अध्याय ८ तथा वाक्यपदीय का द्वितीय कांड।

इसमें दो बातों पर विशेष बल दिया गया है—
(क) वाक्य शब्दों का समूह है।
(ख) वाक्य पूर्ण अर्थ की प्रतीति कराता है।

समीक्षा—भाषाशास्त्री वाक्य की उपर्युक्त दोनों विशेषताओं को पूर्णतया स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। उनके तर्क ये हैं—

(१) भाषा की इकाई वाक्य है, न कि शब्दसमूह या पद!
(२) यह आवश्यक नहीं है कि वाक्य शब्दों का समूह ही हो। एक पद वाले भी वाक्य प्रयोग में आते हैं। 'चलोगे?' 'हाँ', 'कहाँ से?' 'घर से', 'कुत:' 'नद्या:' आदि।
(३) अनेक भाषाओं में एक समस्त पद ही पूरे वाक्य का काम देता है।
(४) वाक्य भाषा का एक अंग है, वह पूर्ण की प्रतीति नहीं करा सकता। एक ग्रन्थ या भाषण में सहस्रों वाक्य होते हैं, तब पूर्ण की अभिव्यक्ति होती है। एक-एक वाक्य विचार-धारा की एक-एक तरंग मात्र हैं।

वाक्य की व्यावहारिक परिभाषा—वाक्य की निर्विवाद शास्त्रीय परिभाषा देना संभव नहीं है। व्यावहारिक दृष्टि से वाक्य की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं—

'भाषा की **लघुतम पूर्ण सार्थक इकाई को वाक्य कहते हैं।'**

'सार्थं लघिष्ठं **पूर्णार्थं वाक्यं स्याद् भाषणाङ्गकम्।'** (कपिलस्य)

अर्थात् 'पूर्ण अर्थ की बोधक सार्थक लघुतम इकाई को वाक्य कहते हैं। यह भाषण या विचारों का एक अंग होता है।'

कोई भी वाक्य तात्त्विक रूप से पूर्ण अर्थ का बोध नहीं कराता है। वह विचार-धारा का एक अंश होता है। पूरा भाषण या पूरा ग्रन्थ ही पूर्ण अर्थ का बोधक होता है। उसे हम 'महावाक्य' कह सकते हैं। वाक्य उसका अंग होगा। पतंजलि ने वाक्य की सत्ता के साथ ही 'महावाक्य' की सत्ता भी मानी है और वाक्य को अंग माना है।

सा चावश्यं वाक्यसंज्ञा वक्तव्या, समानवाक्याधिकारश्च।

(महाभाष्य २-२-१)

७.४. वाक्य के अनिवार्य तत्त्व

अभिहितान्वयवादी आचार्य कुमारिल भट्ट आदि ने वाक्य में तीन तत्त्वों को अनिवार्य बताया है—१. आकांक्षा, २. योग्यता, ३. आसत्ति (संनिधि)। इसको ही आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है।

वाक्यं स्याद् योग्यताकांक्षासत्तियुक्त: पदोच्चय:। (सा० दर्पण २-१)

इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(१) आकांक्षा—आकांक्षा का अर्थ है—अपेक्षा या जिज्ञासा की असमाप्ति। वाक्य में प्रयुक्त शब्दों को एक-दूसरे की अपेक्षा रहती है। कर्ता को कर्म और क्रिया की अपेक्षा रहती है; कर्म को कर्ता एवं क्रिया की तथा क्रिया को कर्ता एवं कर्म की। अपेक्षा को 'जिज्ञासा' भी कह सकते हैं। इस अपेक्षा या जिज्ञासा की पूर्ति होने पर ही वाक्य बनता

है। आकांक्षा की पूर्ति के बिना वाक्य अपूर्ण रहता है। इसलिए वाक्य में पदों का साकांक्ष होना अनिवार्य है। साकांक्षता के कारण वाक्य में पद परस्पर संबद्ध (Inter-related) होते हैं। जैसे—केवल 'राम' कहने से वाक्य पूरा नहीं होता है। जिज्ञासा होती है कि वह क्या करता है?, 'पढ़ता है' कहने पर जिज्ञासा होती है कि 'कौन पढ़ता है?' क्या पढ़ता है?' इसी प्रकार केवल 'पुस्तक' कहने से भी वाक्य की पूर्ति नहीं होती। पुस्तक का क्या होता है? रामः पुस्तकं पठति (राम पुस्तक पढ़ता है), वाक्य में कर्ता 'राम', 'पुस्तक' नाम के कर्म को, 'पढ़ना' क्रिया करता है। ये तीनों पद 'रामः पुस्तकं पठति' परस्पर आकांक्षा-युक्त (साकांक्ष, अपेक्षायुक्त) हैं, अतः वाक्य पूर्ण हुआ। आकांक्षा के द्वारा श्रोता की जिज्ञासा की पूर्ति होती है, साकांक्ष पद ही वाक्य होते हैं। आकांक्षा-रहित गाय, अश्व, मनुष्य आदि शब्द वाक्य नहीं होते।

(२) योग्यता—योग्यता का अर्थ है—पदों में पारस्परिक संबंध की योग्यता या क्षमता। अर्थात्—पदों के द्वारा जो अर्थ कहा जा रहा है, उसको क्रियात्मक रूप देने की योग्यता या क्षमता होनी चाहिए। इसका अभिप्राय यह होता है कि पदों के अन्वय में कोई बाधा न हो। पदों के अन्वय में दो प्रकार से बाधा पड़ती है—(क) अर्थमूलक, (ख) व्याकरण-मूलक।

(क) अर्थमूलक बाधा या अयोग्यता—कोई वाक्य व्याकरण की दृष्टि से ठीक हो, परन्तु अर्थ या प्रतीति की दृष्टि से अयोग्य या अनुपयुक्त हो तो वह वाक्य नहीं होगा। जैसे—स वह्निना सिञ्चति (वह आग से सींचता है), स वायुना लिखति (वह हवा से लिखता है)। आग से सींचा नहीं जा सकता है और न हवा से लिखा जा सकता है, अतः ये दोनों वाक्य व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध होने पर भी अर्थ की दृष्टि से अयोग्य हैं, अतः वाक्य नहीं हैं, यहाँ पर अर्थ या प्रतीति-सम्बन्धी बाधा है।

(ख) व्याकरण-मूलक बाधा या अयोग्यता—वाक्य यदि अर्थ की दृष्टि से ठीक हो और व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध हो तो वह वाक्य नहीं माना जाएगा। लिंग, विभक्ति, वचन, विशेषण आदि में 'व्याकरणिक अन्विति' या एकरूपता होनी चाहिए। निम्नलिखित वाक्यों में व्याकरण की दृष्टि से अयोग्यता है—१. सुशीला जाता है। २. राम आती है। ३. मैं सुन्दरी पुस्तक देखता है। ४. राम ने बोला। इनमें लिंग, विभक्ति, विशेषण आदि की अयोग्यता है।

अंग्रेजी में व्याकरणिक दृष्टि से एकरूपता को Congruence या Concord कहते हैं। हिन्दी में व्याकरणिक एकरूपता को 'अन्विति' या 'पदों की अन्विति' कहते हैं। अंग्रेजी के Congruence या Concord का अभिप्राय संस्कृत के 'योग्यता' शब्द में समाहित है।

(३) आसत्ति (संनिधि)—आसत्ति का अर्थ है—समीपता। इसको ही संनिधि भी कहते हैं। समीपता से अभिप्राय है कि वाक्य में प्रयुक्त पद लगातार या क्रमबद्ध रूप से उच्चरित हों। बीच में आवश्यकता से अधिक समय देने पर उन पदों का क्रम टूट जाएगा और वे वाक्य नहीं बनेंगे। **'मैं खाना खाता हूँ' में 'मैं खाना'** आज बोला गया और २ घंटे

या १ दिन बाद कहा गया—'खाता हूँ' समय का अधिक व्यवधान हो जाने से यह वाक्य नहीं बनेगा और न इससे कोई अर्थ निकलेगा। इसलिए समय की समीपता या सान्निध्य अनिवार्य है, जिससे वाक्य क्रमबद्ध हो सके।

इस प्रकार आचार्य विश्वनाथ ने आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति से युक्त पदों के समूह को वाक्य कहा है। इसी प्रकार उक्त गुणों से युक्त वाक्यों के समूह को 'महावाक्य' नाम दिया है। सभी काव्य, महाकाव्य आदि ग्रन्थ 'महावाक्य' हैं। कुमारिल ने तन्त्रवार्तिक में वाक्यों से महावाक्य बनने में अंगागिभाव से अपेक्षा होने से पुनः समन्वय होकर एकवाक्यता मानी है।[1]

कुछ विद्वानों ने आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति के अतिरिक्त दो अन्य तत्त्वों का उल्लेख किया है—१. सार्थकता, २. अन्विति। वस्तुतः ये दोनों तत्त्व 'योग्यता' में ही आ जाते हैं।

१. सार्थकता—वाक्य में प्रयुक्त शब्द सार्थक होने चाहिए। पद तभी वाक्य बनते हैं, जब वे सार्थक हों। 'योग्यता' के द्वारा पदों की सार्थकता भी आवश्यक है। सार्थक पद ही अर्थ-प्रतीति की योग्यता रखते हैं। अतः सार्थकता का पृथक् उल्लेख अनावश्यक है।

२. अन्विति (**अन्वय**)—अन्विति का अर्थ है—व्याकरण की दृष्टि से एकरूपता। लिंग, वचन, विभक्ति, विशेषण आदि समरूप हों। लिंगभेद, वचनभेद, विभक्तिभेद आदि से व्याकरण-सम्बन्धी अनुरूपता विच्छिन्न होती है, अतः अन्विति की आवश्यकता है। ऊपर 'योग्यता' में व्याकरणमूलक बाधा का अभाव भी अनिवार्य बताया गया है, अतः अन्विति या अन्वय को पृथक् मानना आवश्यक नहीं है। व्याकरण-सम्बन्धी अन्विति को अंग्रेजी में Congruence, Concord, Agreement कहते हैं।

७.५. वाक्य में पद-विन्यास के आवश्यक गुण

भारतीय आचार्यों ने वाक्य में आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति गुणों का होना अनिवार्य बताया है। पाश्चात्त्य भाषाशास्त्रियों ने वाक्य में पद-विन्यास-सम्बन्धी चार विशेषताओं का उल्लेख किया है। इन्हें Features of arrangement कहा जाता है। ये हैं—१. Selection (चयन), २. Order (क्रम), ३. Modification (ध्वनि-परिवर्तन), ४. Modulation (स्वर-परिवर्तन)।

१. चयन (Selection)—चयन का अर्थ है—वाक्य में प्रयुक्त होने वाले उपयुक्त पदों का चयन। यह चयन दो प्रकार से होता है—(क) अर्थ की दृष्टि से, (ख) रूप की दृष्टि से।

(क) अर्थ की दृष्टि से चयन—भाव और भाषा की दृष्टि से किस वाक्य में कौन सा शब्द या पद अत्यन्त उपयुक्त है, उसका ही प्रयोग करना। यह आर्थिक चयन है।

---

१. स्वार्थबोधसमाप्तानाम् अङ्गाङ्गित्व-व्यपेक्षया।
वाक्यानामेकवाक्यत्वं पुनः संहत्य जायते॥ (तन्त्रवार्तिक)